बवाना

घर-घर की कहानी

दिल्ली की बवाना पुनर्वास बस्ती की सच्चाई

बवाना

घर घर की कहानी

DECEMBER 2013

सम्पादन शबनम सुल्ताना

शोध एवं लेखन ब्रह्मा पान्डेय ,मो.उसामा

वित्तीय सहायताः फोर्ड फाउन्डेशन

कवर पेजः रोहित अरोडा

पृष्ठ सज्जा जोएल माईकल

प्रकाशक संचल फाउन्डेशन

खतरा केन्द्र, 92 –एच ,

तीसरी मंजिल, प्रताप मार्केट,

मुनीरिका, नई दिल्ली –110067

मुद्रक कॉन्सेप्ट आर्ट्स

आभार

हम आभार व्यक्त करते हैं श्री दुनू राय जी एवं शबनम सुल्तानाजी का जिनके साथ शहरी शासन पर काम करते हुए आवास के अधिकार और उससे जुडे कई मूलभूत अधिकारों को समझने का मौका मिला। साथ ही हम आभारी हैं अपनी टीम के सदस्यों मो. रहबर और ज़हीर अहमद का जिनके साथ मिलकर हम लोगों को बवाना पुनर्वास कालोनी के लोगों के संघर्ष को नज़दीक से दखने का मौका मिला।साथ ही खतरा केन्द्र के अन्य सदस्यों का भी आभार व्यक्त करते हैं जिन्होने अपने अनुभवों से लगातार हमारा मार्गदर्शन किया।

बवाना पुनर्वास कालोनी के लोगों के संघर्ष की कहानी बवाना के लोगों द्वारा किए गए संघर्ष के अनुभवों और उनकी मदद के बिना संभव नही थी। हम आभारी हैं श्री उमेश सिंह, लीलावती, दयाराम, देवराज रामजीलाल सहित बवाना पुनर्वास कालोनी के उन सभी निवासियों का जिनकी एकजुटता और सतत संघर्ष से प्रेरित होकर ये शोध पुस्तिका लिखी गयी है।

ब्रह्मा पान्डेय
मो.उसामा

विषय–सूची

प्रस्तावना	01
बवाना	03
बवाना पुनर्वास कालोनी की भौगोलिक और मानवीय ifjfLFkfr;k	05
बन्नूवाल नगर	09
सावन पार्क	15
पच्चिम विहार	23
पुनर्वास नीति विरोधाभासी	27
संघर्श	31
उपसंहार	39

प्रस्तावना

दिल्ली ने नई दिल्ली बनने का एक पूरा चक्र देखा है। महाभारत के हस्तिनापुर और इन्द्रप्रस्थ का ये इलाका कभी केन्द्रीय सत्ता और शक्ति का प्रतीक हुआ करता था। कई बड़े विध्वंसक युद्धों की गवाह बनते हुए दिल्ली ने कई बार देश की राजधानी का रुतबा भी खोया और देश की राजधानी पाटलिपुत्र – कन्नौज – दिल्ली – आगरा – दिल्ली – कलकत्ता से होते हुए फिर नई दिल्ली बनी जब सन् 1911 में अंग्रेजों ने दिल्ली को देश की राजधानी बनाया और तब से लेकर अब तक इस देश के भविष्य को बनाने और लोगों को बसाने और उजाड़ने की नीतियां यहीं से बनाई जाती रही हैं। दिल्ली सत्ता, प्रतिष्ठा, सत्ताधारियों के लालच, अहंकार इनके प्रदर्शन और उनके पतन को समय के थपेड़ों में कुछ बचे और अधबचे खंडहरों में समेटे हुए है। प्राकृतिक आपदाओं और बाहरी हमलों से बचाने के लिए दिल्ली को ही कई बार बदला गया, लेकिन दिल्ली ने कई राजवंशों समेत ईस्ट इंडिया कम्पनी और ब्रिटेन की महारानी को सल्तनत बख्शी है, और अब 1947 से ये देश के नीति–नियंताओं (नेताओं और सरकारी अफसरों) को देश के शासक होने का गौरव प्रदान कर रही है।

दिल्ली के बनने और कई बार बर्बाद होने, इसके ज़िम्मेदार लोगों के साथ ही हमेशा से अपने अस्तित्व के लिए जद्दोजहद कर रहे दिल्ली के आम लोगों ने दिल्ली की महत्त्वपूर्णता को जिन्दा रखा है। लेकिन कोई भी शहर सिर्फ सत्ताओं का इतिहास नहीं समेटता, भले ही उसकी गिनती न की जाए, फिर भी शहर को अपने खून–पसीने से बनाने में और उसे गति देने में शामिल रहे लोगों को भी समेटता है। कोई भी शहर जो आकार लेता है, इसे यही मेहनतकश अपना कंधा लगाकर और शहर की हर छोटी–बड़ी ज़रूरतों को पूरा कर शहर को आर्थिक और सामाजिक रूप से गति प्रदान करने के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। दिल्ली भी पिछले कई सालों से तेजी से बदली है। ऐतिहासिक ईमारतों, बड़े–बड़े फ्लाईओवर, चौड़ी सड़कें, होटल, मैट्रो, ऊँची–ऊँची इमारतें और इन सबकी ऊँची होती क़ीमतों में परिवर्तन हुआ है। लेकिन शहर को शहर बनाने के लिए इंजीनियर भी चाहिए और मज़दूर भी चाहिए। सरकार की योजनाओं को ज़मीन पर उतारने या शहर की आर्थिक गति को बढ़ाने में हर तरह के व्यक्ति का योगदान रहता है लेकिन जब शहर रईस होने लगता है और रईसी सिर्फ कुछ लोगों के हाथों में चली जाती है तो फिर इन्हीं मेहनतकश मज़दूरों को शहर से बाहर निकालने की साजिश रची जाती है और शहर के संसाधनों को एक खास संभ्रात वर्ग के लिए सुरक्षित करने का कुचक्र चलता है।

शहर विकसित होता है। बाज़ार बनता है। ज़मीन और आवास मंहगे हो जाते हैं। लेकिन शहर में रहने वाले श्रमजीवियों के द्वारा बसाई गई बस्तियों, विकसित किए गए छोटे–छोटे बाज़ारों, शहर को दी जाने वाली बेहद आवश्यक सुविधाओं के चलते ही इन ज़मीनों के दाम बढ़ते हैं और इन ज़मीनों के मंहगें होने पर इन्हीं मेहनतकशों को उसी जगह से बेदखल कर दिया जाता है। उनके आवास और रोज़गार छीनकर शहर के एक हिस्से से उठाकर उन्हें कई किलोमीटर दूर फेंक दिया जाता है। दिल्ली मे यह तांडव लगभग पिछले 40 सालों से कई–कई बार चला है। सरकारी दस्तावेज़ों मे इस प्रक्रिया को "पुनर्वास" कहते हैं और जहां इन बेदखल लोगों को भेजा जाता है उस जगह को पुनर्वास बस्ती या कालोनी कहा जाता है। बवाना पुनर्वास

कालोनी भी इनमें से एक है। यहां देश की राजधानी दिल्ली के कई इलाकों से बेदखल किये गए लोगों को पुनर्वास के लिए भेजा गया था। यह कालोनी भी दिल्ली की कई और पुनर्वासित कालोनी जैसी ही है। बेहद गंदा इलाका, सुविधाओं से वंचित लोग, ना साफ और शुद्ध पानी, ना राशन, स्वास्थ्य, शिक्षा, सुरक्षा, ना ही रोज़गार और जनसंख्या के लिहाज़ से जो भी सुविधाएं सरकार ने दी हैं वह काफी नहीं हैं। दिल्ली को साफ और सुन्दर बनाने के लिए अभी तक रोज़गार और आवास छीनकर लगभग 16 हजार से ज्यादा परिवारों को बवाना में पुनर्वास के लिए भेजा गया। लेकिन सरकार की नजर में पुनर्वास किसे कहते हैं, यह बवाना जाकर देखा जा सकता है। दरअसल बवाना सहित दिल्ली की अन्य पुनर्वास कालोनीयों की हकीक़त, बेदखली और पुनर्वास की पूरी योजना के पीछे सरकार की मंशा की ओर साफ इशारा करती है, कि शहरों में आवास और रोज़गार छीनकर राजधानी को किस तरीक़ें से बदला जा रहा है ? हकीक़त को देखकर ये सवाल तो पूछा ही जाना चाहिए कि इस तरह से शहर को बदलने की ये कौन सी मुहिम चलाई जा रही है ? शहर के मेहनतकश लोगों से उनके घर और रोज़ी रोटी छीनकर बेदखल करने का काम किसके इशारे पर किया जा रहा है ? और यह भी विचार करना होगा कि इन सबके पीछे कौन सी सामाजिक और आर्थिक ताक़तें काम कर रही हैं ? इस तरह सुनियोजित बेदखली की कार्यवाही पुनर्वास के बहाने लोगों के कई संवैधानिक हक़ों को ताक पर रखकर ही की जाती रही है। जिस ज़मीन पर मेहनत मज़दूरी करने वाले लोग एक–एक पैसा जोड़कर अपने घर बनाते हैं, वहां से उनको बेदखल करके उस जगह पर होटल, पार्क, मंहगे आवासीय परिसर बनाने की क़वायद चलती है। उसके बाद इस तरह की योजनाओं को अमली जामा पहनाने के लिए आवास और पुनर्वास नीतियां या मास्टर प्लान जैसे दस्तावेज़ बनते हैं। शहर को सुरक्षित, साफ, पर्यावरण के अनुकूल, सुविधाओं के निजीकरण के लिए एक सोचा–समझा हमला इन शहरी मेहनतकशों के आवास और रोज़गार पर किया जाता है। दिल्ली में हमेशा ऐसे हमले होते रहे हैं। पिछले डेढ़ दशक से एक और हवा बही है जो दिल्ली को "विश्वस्तरीय" बनाने की है। इसके लिए 2010 के राष्ट्रमंडल खेल प्रमुख बहाना था। इन्हीं खेलों की आड़ में तमाम मज़दूर बस्तियों को तोड़ दिया गया, लोगों को बेदखल कर दिया गया। बेदखली और पुनर्वास का एक पूरा कुचक्र चला, ज़मीनें बेची गईं और ज़मीन पर कब्जा पाने के लिए इन शहरी गरीबों की जिन्दगियां तबाह कर दी गयीं। घर ही नहीं उन्हें सामाजिक, आर्थिक और मानसिक रूप से कमज़ोर कर दिया गया। दिल्ली में पिछले दशक में बवाना, नरेला, मदनपुरखादर, भलस्वा, पप्पनकलां जैसी लगभग 20 पुनर्वासित कालोनियां बसाई गई।

इन बेदखल लोगों को पुनर्वास करते समय दावे तो बहुत लम्बे चौड़े किए गए लोगों को सब्ज–बाग दिखाए गए कि सारी सुविधाएं मिलेगी, काम भी मिलेगा और आदर्श पुनर्वास कालोनियों में मानी जाएगी। इन्हीं में से एक बवाना है। बवाना की हक़ीकत और यहां के लोगों की जिन्दगियां, उनकी पीड़ा और उनका अब तक अपने अधिकारों के लिए किया गया संघर्ष दर्शाता है कि सरकार और प्राधिकरणों की नज़र में आदर्श मानक क्या है, और हमें ये सोचने पर विवश करता है कि क्या संविधान द्वारा गठित कल्याणकारी राज्य की अवधारणा में आदर्श शब्द मानवीयता और संवेदना दोनों से रहित है? क्या कल्याणकारी राज्य इसी तरह अपने नागरिकों के घर रोजी–रोटी छीनते हैं ?और क्या आदर्श का मतलब अपने ही नागरिकों के अधिकारों को निगल जाना है ?

बवाना

बवाना पुनर्वास बस्ती की पटकथा उस अदालती निर्णय का नतीजा है जो 19 अप्रैल 1996 को उच्चतम न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) ने दिया था। दरअसल पर्यावरण मामलों के वकील एम.सी.मेहता की एक याचिका पर सुनवाई करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने आदेश दिया था कि 'दिल्ली मास्टर प्लान 2001' में वर्णित प्रदूषण और आवासीय क्षेत्र में गैर–आवासीय गतिविधियों को रोका जाए। और इन औद्योगिक ईकाईयों को शहर के बाहर फेंकने का आदेश सुना दिया गया। इस तरह शहर में चल रही लगभग 75 हज़ार से ऊपर छोटे और मझौले उद्योग ईकाईयों के अस्तित्व पर खतरा मंडराने लगा। इस पुनर्स्थापन में मज़दूरों और उद्योग मालिकों, दोनों के सामने रोजी रोटी का संकट पैदा हो गया। कारण, एक तो बवाना पुनर्वास क्षेत्र, शहर से काफी दूर था। दूसरा 75 हजार औद्योगिक ईकाईयों को बन्द तो कर दिया गया, लेकिन इनमें से केवल 50 हजार ईकाईयों को शार्टलिस्ट किया गया और केवल 22 हजार ईकाईयों को ही अपनी गतिविधियां शुरू करने की अनुमति मिली। आर्थिक और बेहतर संसाधनों के अभाव में लगभग 4,000 औद्योगिक ईकाईयों ने ही काम करना शुरू किया है। सरकारी दफ्तरों के चक्कर लगाने के साथ ही बैंक से कर्ज़ लेकर बैठे कई व्यापारी अनापत्ति प्रमाणपत्र (एनओसी) न मिलने के चलते आत्महत्या तक कर बैठे। जिन ईकाई मालिकों ने फैक्ट्रियां लगाईं उन्होनें भी आम सुविधाओं की कमी के चलते निर्माण धीरे–धीरे शुरू कराया क्योंकि पानी, बिजली और समुचित विकास के आभाव में ईकाई निर्माण की लागत बहुत बैठती थी। बहुत से ईकाई मालिकों को ज़मीन तो मिली लेकिन निर्माण कराने की हिम्मत नहीं जुटा सके।

शहर से दूर वीरान जगह पर फैक्ट्री लगाने के बाद उसकी सुरक्षा की जिम्मेदारी फैक्ट्री मालिक के ज़िम्मे ही है क्योंकि फैक्ट्रियों में चोरी और लूट–पाट आम बात है। फिलहाल बवाना औद्योगिक ईलाक़े में औद्योगिक गतिविधियां चल तो रही हैं लेकिन इससे न तो लोगों को रोज़गार मिला और न ही उद्योगपतियों को कोई राहत मिली।

जब शहर से छोटे–छोटे उद्योगों को बेदखल करने का फरमान सुनाया गया तो ईकाई मालिकों के साथ ही साथ इन ईकाईयों में काम करने वाले कर्मचारियों को रोज़ी रोटी का संकट उत्पन्न हुआ। इधर सरकार को पर्यावरण के साथ ही दिल्ली को विश्वस्तरीय शहर याने "वर्ल्ड क्लास सिटी" बनाने की सनक सवार हुई। उसके लिए बड़े स्तर पर दिल्ली में निवेश की ज़रूरत थी लिहाज़ा एक बहुत बड़े व्यापारिक खेल आयोजन की दरकार थी। जैसा कि 1982 में एशियाड खेल के समय हुआ था और इस बार राष्ट्रमंडल खेलों की आड़ में बदलाव की बयार बहाई जाने लगी। इससे पहले 1990 में, 1994 में, और 1998 मे भारत में राष्ट्रमंडल खेलों को कराने की योजना तो बनाई गयी लेकिन सन् 2003 में ही भारत को सात साल बाद इन खेलों को करवाने की मेजबानी मिली इसके बाद ही राजधानी को हराभरा चमकदार बनाने की मुहिम दिखने लगी और फिर शहर भर में गरीब मेहनतकशों की बस्तियां उजाड़ने की अमानवीय मुहिम शुरू हुई।

इधर झुग्गियों को तोड़ा जा रहा था। उधर छोटे–छोटे व्यवसायिक केन्द्र भी सील किए जा रहे

थे। रोज़गार और आवास दोनों ही सरकारी विभागों और अदालती आदेशों के निशाने पर थे। सरकार और प्राधिकरणों के लिए अदालती आदेश ढाल बन गए और इन आदेशों की आड़ में बस्तियां उजाड़ना शुरू किया जाने लगा। जनवरी 2004 में यमुना पुश्ता को, जहां असंगठित और कम आय के शहरी श्रमिकों की बस्ती थी, उजाड़ दिया गया। यमुना पुश्ता को उजाड़ने के लिए बहाना बनाया गया कि इस पूरे क्षेत्र को "ग्रीन बेल्ट" घोषित किया जाएगा तथा इसे पार्कों और झरनों से खूबसूरत किया जाएगा। इस पूरे काम का दायित्व तत्कालिन पर्यटन एंव सांस्कृतिक मंत्रालय के मुखिया जगमोहन को दिया गया और इस पूरे इलाक़े को तोड़कर ग्रीन बेल्ट बनाने की महत्वाकांक्षी योजना पर मुहर लग गई। यमुना पुश्ता में लगभग 35,000 परिवार रहते थे। लगभग 1 लाख से ज्यादा व्यक्तियों को फरवरी 2004 से अप्रैल 2004 के बीच में विभिन्न चरणों में बेदखल कर दिया गया। जहां कुछ आंकड़े 35,000 परिवारों का दावा करते हैं तो दूसरी तरफ दिल्ली विकास प्राधिकरण (बस्ती तोड़ने वाला विभाग) के सर्वे में 16,000 परिवारों को ही दर्शाया गया है। लेकिन जब इस इलाके को तोड़ा गया तो "डीमोलिशन की पर्ची" (घर तोड़ते समय घर के मालिक को दी जानी वाली रसीद) केवल 9,000 परिवारों को ही दी गयी जबकि 7,000 परिवारों को पुनर्वास के योग्य नहीं माना। सीधा सा अर्थ है कि यमुना पुश्ता के लगभग 75 प्रतिशत (लगभग 24,000 परिवार) परिवारों को आवास के अधिकार से वंचित कर अधर में छोड़ दिया गया। बेदखल किए गए कुछ परिवारों को, बवाना इण्डस्ट्रियल एरिया (औद्योगिक क्षेत्र) के पास बसाने की योजना के तहत् बवाना भेजा गया। यमुना पुश्ता टूटने के बाद अन्य झुग्गी बस्तियों को तोड़ने की मुहिम तेज कर उन्हें शहर से बाहर अलग–अलग पुनर्वासित इलाकों में भेजा गया। शहर के अन्दर टूटने वाली बस्तियों में यमुना पुश्ता, मूलचन्द झुग्गी, बन्नूवाल नगर, सावन पार्क, पश्चिम विहार की कई बस्तियां, विकासपुरी, केलागोदाम, प्रगति मार्केट सहित कई और छोटी–छोटी बस्तियों के परिवारों को उजाड़कर बवाना जे.जे. कालोनी भेजा गया।

अध्याय 2

बवाना पुनर्वास कालोनी की भौगोलिक और मानवीय परिस्थितियां

बवाना पुनर्वास कालोनी उत्तर पश्चिम दिल्ली के हरियाणा और दिल्ली की सीमा पर स्थित है। कुल आबादी 80,000–85,000 है और लगभग 16,000–17,000 से ज्यादा परिवार दिल्ली की विभिन्न बस्तियों से बेदखल होकर आए हैं। बवाना औद्योगिक इलाक़े और पुनर्वास कालोनी के बीच पड़ने वाली नहर और एक सूखा नाला इन दोनों की सीमा निधारित करता है। मुख्य शहर से बवाना पहुंचने के लिए सीधे बस या फिर मेट्रो से फीडर बस द्वारा पहुंचा जा सकता है।

इस पुनर्वास कालोनी को गहराई से समझना हो तो औद्योगिक इलाके और बवाना पुनर्वास कालोनी की सीमा बांटने वाला नहर का रास्ता ज़्यादा ठीक लगता है। नहर पार होते ही हमें बवाना पुनर्वास कालोनी दिखती है। अन्दर घुसते ही कूड़े के ढेर और गन्दी नालियां, कुछ पक्के, कुछ अधपक्के बने मकान और इन्हीं मकानों के सामने दाएं बांए पॉलीथीन या टीन की या तम्बूनुमा झुग्गियां हैं। नहर की दक्षिणी छोर से बवाना पुनर्वास कालोनी की शुरूआत होती है। पक्के मकानों के बीच ही झुग्गियों की एक लम्बी श्रृंखला नहर के किनारे–किनारे कालोनी के आखिरी छोर तक जाती है जहां लगभग 2,000 से ज्यादा झुग्गियां हैं।

इसके अलावा इस इलाके के अन्दर जगह–जगह ऐसे ही टाट, पॉलीथीन या टीन की झुग्गियां हैं। जब किसी झुग्गी बस्ती को तोड़कर पुनर्वास कालोनी में भेजा जाता है तो व्यवस्थित तरीके से बसाने की योजना पुनर्वास नीति और मास्टर प्लान में बनाई जाती है। इसका उद्देश्य यह होता है कि लोग झुग्गियों में रहने की बजाए पक्के मकानों में रहे और उन्हें सभी मूलभूत सुविधायें मिले तो फिर पुनर्वास कालोनियों में लोग झुग्गी डालकर क्यों रहने लगते हैं ?

दरअसल जब भी कोई झुग्गी बस्ती तोड़ी जाती है तो उस बस्ती में रहने वाले परिवारों का सर्वे किया जाता है। ये सर्वे जमीन का मालिक और घरों को तोडकर बसाने वाले सरकारी विभाग मिलकर करते हैं। लेकिन ये सर्वे प्रक्रिया बहुत ही मनमाने ढंग से की जाती है। लोगों को पहले से सूचना नहीं होती जिससे मौक़े पर मौजूद न होने के कारण सर्वे में ही कई परिवार पुनर्वास की योग्यता से वंचित कर दिए जाते हैं। उसके बाद जब बेदखली की कार्यवाही की जाती है तो ये अचानक की जाती है। घरों को तोड़ने के दौरान भारी पुलिस बल और बुलडोज़र का खौफ दिखाया जाता है। अचानक इस तरह की कार्यवाही में लोगों के ज़रूरी सामान और पहचान समन्धी दस्तावेज़ खो जाते हैं और दस्तावेज़ न होने पर उनको प्लॉट नहीं मिलता (भले ही सर्वे में उनका नाम हो)। दूसरी तरफ भले ही सारे दस्तावेज़ हों लेकिन अगर उस व्यक्ति का सर्वे में नाम नहीं है तो भी प्लॉट नहीं दिया जाएगा। तो फिर जो लोग नहीं बसाए गए वो कहाँ जाए ? बवाना पुनर्वास कालोनी की भी यही कहानी है और इसलिए पुनर्वास कालोनी होने के बावजूद भी यहां बहुत बड़ी मात्रा में झुग्गियां बनी हुई हैं। ऐसा नहीं है कि इन लोगों ने बवाना आने के बाद प्लॉट पाने की योग्यता के सबूत दिल्ली विकास प्राधिकरण (डी.डी.ए.) के सामने ना पेश किए हों। लेकिन उनके दस्तावेज़ों को नकार दिया गया। अगर ये मान भी लिया गया कि सारे दस्तावेज़ सही हैं तो इन दस्तावेज़ों की जांच के नाम पर लोगों को सालों तक परेशान किया जाता है और उनको प्लॉट नहीं दिया जाता। वहीं दूसरी ओर पुनर्वास कालोनी में ज़मीन बेचने

और गैर कानूनी ढंग से प्लॉट आबंटन में हेरा फेरी करने के मामले में विभागीय या सी.बी.आई. की जांच बैठाकर लोगों को प्लॉट आवंटन के ज्यादातर मामलों को लटकाया जाता रहा है। इस तरह जो भी झुग्गी बस्ती शहर के अन्दर से तोड़ी गयी उस बस्ती के केवल एक चौथाई परिवारों को ही प्लाट आबंटन के येाग्य समझा गया (जैसा कि यमुना पुश्ता के मामले में हुआ था)। और बाक़ी परिवारों के पास प्लॉट न मिलने के कारण झुग्गी डालने के अलावा कोई चारा नहीं बचा। यही कुछ ऐसे कारण हैं जो बेदखल परिवारों को मजबूर करते हैं कि वो इस पुनर्वास कालोनी में भी झुग्गी में रहने को मजबूर हैं।

बवाना पुनर्वास कालोनी की दशा बेहद खराब है यहां बेतरतीब गंदगी और कूड़े के ढेर बिखरे हुए हैं। नहर का रास्ता, मलमूत्र की गन्दगी और दुर्गन्ध में अटा है। बरसात में नहर के रास्ते की गन्दगी नीचे झुग्गियों की तरफ बहती है। मिट्टी खिसकने के साथ इन झुग्गियों में पानी भर जाता है, जिसका निकास कहीं से सम्भव नहीं होता। झुग्गियों को पुर्नवासित करने वाला दिल्ली विकास प्राधिकरण इन झुग्गीयों को अवैध बता रहा है कारण वहीं हैं जो ऊपर बताए जा चुके हैं, इन झुग्गियों में रहने वाले परिवारों में से ज़्यादातर के पास प्लॉट पाने की योग्यता के सारे दस्तावेज़ हैं और बवाना पुनर्वास कालोनी में अभी भी 2500 प्लॉट खाली पड़े हैं लेकिन डी.डी.ए. किसी भी क़ीमत पर प्लॉट आवंटन नहीं करना चाहता। इसलिए पिछले 7 सालों से उनका पुनर्वास नहीं हुआ। इन झुग्गियों को छोड़ बवाना के अन्दर नालियां कीचड़ से भरी हुई, और सार्वजनिक शौचालयों में से आधे में ताले लटके मिलते हैं। यहां 18 वर्ग मीटर या 12.5 वर्गमीटर के पक्के घर है, कहीं बने हैं कहीं लोग बनवा रहे हैं और कहीं खाली प्लाट पड़े हैं। पूरे बवाना में पार्कों के लिए जगह छोड़ी गई है लेकिन पार्कों में गन्दगी के ढेर लगे रहते हैं। बरसात का पानी जगह–जगह भरा हुआ है।

नहर के पास छोटे–छोटे अधनंगे बच्चे नहा रहे हैं या खेल रहे हैं। इन बच्चों से पूछा "कि नहर में डूब गए तो" वे खुद सवाल करते हैं–"तो नहाएं कहां" ?, पढ़ने जाते हो ? जवाब मिलता है– "नहीं, पढ़ने कहाँ जाएं फीस कहाँ है ?" इन बच्चों को देखकर अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि कब इन्होंने पोषित आहार लिया होगा ? इनके क्या सपने रहे होंगे? लोग कालोनी के अन्दर जमघट लगाए बैठें मिल जाते हैं। हमने सवाल किया – दिन भर ऐसे ही बैठे रहते हो, कहीं काम नहीं करते ? जवाब मिलता है "काम कहां है ? यहां फैक्ट्रियों में काम नहीं मिलता और फैक्ट्री में हमें काम देते भी नहीं हैं" और अगर काम मिल भी जाता है तो 10 – 10 घंटे काम करने का सिर्फ 3,000 या 3,500 रू. महीना मिलता है। फिर घर का खर्चा कैसे चलता है ? जवाब "बस चले जाते हैं, शहर में, रिक्शा खींचते हैं, माल ढोते हैं, पल्लेदारी, बेलदारी करते हैं। लेकिन रोज़ नहीं जाते। जितना मिलता नहीं उतना किराए और खाने पीने में खर्च हो जाता है। "

महिलाओं की दशा और दयनीय है। ज़्यादातर महिलाऐं अपने पूर्व निवास स्थानों पर काम करती थीं, दूसरों के घरों में, फैक्ट्रियों में या घर पर ही अपना खुद का कोई काम करती थी। लेकिन अब वे भी खाली बैठी हैं। बन्नूवाल नगर की दुर्गा कहती है – "वहां सब कुछ था। यहां आकर तो बर्बाद हो गए। कोई बीमार हो जाए तो कहां दिखाने जाओ ? काम कहीं नहीं मिलता है।''

ये पीड़ा सिर्फ दुर्गा की नहीं, यहां की तमाम महिलाओं की है। पुनर्वास के समय उनके अपने

समाज बिखर गए और दूसरी बस्तियों से आए लोगों से ताल्लुक बनाने में समय लगता है। घर की हालत दयनीय हो गई। बवाना पुनर्वास कालोनी में कोई अस्पताल नहीं है। उन्हें छोटी या बड़ी बीमारी के लिए सरकारी अस्पताल जाना पड़ता है जो यहां से 7–8 किलोमीटर दूर है। कई महिलाएं जो गर्भवती होती हैं, समय पर इलाज न मिलने से चल बसी हैं। बच्चे हर साल नहर में डूब कर मर जाते हैं या सक्रांमक बीमारियां (डायरिया, हैजा, डेंगू, पीलिया इत्यादि) से लोग बारह महीने ग्रसित रहते हैं और अकाल मौत का शिकार बनते हैं।

अध्याय 3

बन्नूवाल नगर

यह बस्ती सन् 1975–77 के बीच बनी थी और इसमें काम करने वाले ज़्यादातर लोग निर्माण मज़दूर थे। कुछ लोग फैक्ट्रियों में काम करते और कुछ अपना व्यवसाय (रेहड़ी, दुकान आदि) भी लगाते थे, लेकिन 70–75 प्रतिशत निर्माण मज़दूर ही थे। औरतें भी निर्माण मज़दूर के तौर पर ही काम करती थीं और बीमार होने या उम्र बढ़ने पर बस्ती के लोग आस–पास की कोठियों, घरों में घरेलू काम दिलवा देते थे। सन् 1982 में एशियाड खेलों के समय बड़े स्तर पर निर्माण कार्य के लिए मज़दूरों की जरूरत को देखते हुए, सरकार ने भी लोगों को बस्ती में बसने दिया। मज़दूरों ने ना केवल सार्वजनिक निर्माण कार्य के लिए, बल्कि आस–पास बनने वाली कालोनियों के निर्माण में भी अपना पसीना बहाया। 1990 तक इस बस्ती के परिवारों में काफी बढ़ोतरी हो चुकी थी, उसके बावजूद भी सार्वजनिक, मौलिक सुविधाओं से लोग पूरी तरह वंचित थे। न पानी, न सड़कें, बरसात में गन्दगी, पानी भराव जैसी समस्यायें थीं और लोग बीमार हो जाते थे। पूरी बस्ती में एक ही नल था जिससे पानी की सप्लाई होती थी। इससे अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि लोगों का जीवन कैसा रहा होगा ?

चूँकि इस बस्ती में ज़्यादातर निर्माण मज़दूर थे और दिल्ली में कई जगह चल रहे निर्माण कार्यों में एक साथ काम करने की वजह से बेहतर से परिचित थे। 1985 के आसपास कुछ जागरूक निर्माण मज़दूरों ने धीरे–धीरे संगठित होना शुरू किया और साथ ही अन्य मज़दूर संगठनों से संपर्क हुआ। दिल्ली में 80 के दशक के आखिरी सालों में छोटे–छोटे मज़दूर संगठनों ने अपनी समस्याओं और मांगों को लेकर काफी संघर्ष किया। निर्माण मज़दूरों के संगठनों पर भी इसका असर पड़ा और इन्हीं मुद्दों को लेकर दिल्ली में कई बड़े जुलूस और "मार्च" निकाले गए। ऐसे ही एक बड़े जुलूस में दक्षिण भारत से आए कई मज़दूर नेता शामिल हुए, इससे निर्माण मज़दूरों का आपसी सम्पर्क बढा। नतीजतन 1990 में "निर्माण मज़दूर पंचायत संगम" संगठन बनाया गया। इस संगठन के तहत् लोग मौलिक सुविधाओं के लिए एम.सी.डी अन्य विभाग के दफ्तरों से बातचीत, घेराव एवम् बैठकें की गयी और सुविधाओं को पाने में सफल रहे। निर्माण मज़दूरों के संगठन को मज़बूत करने के लिए "निर्माण मज़दूर पंचायत संगम" (एन.एम.पी.एस.) के कार्यकर्त्ताओं ने जन सम्पर्क और कई जन जागरूक अभियान चलाए। इस संगठन ने सन 1996 मे दो महत्त्वपूर्ण कानून बनवाए , पहला बिल्डर्स और अन्य कामगार कल्याण कर कानून और दूसरा भवन एवं संनिर्माण कर्मकार (नियोजन का विनियमन तथा सेवा की शर्तें)। दोनों कानून निर्माण मज़दूरों के लिए सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने में अति महत्त्वपूर्ण साबित हुए हैं। 1991–1992 में "निर्माण मज़दूर पंचायत संगम" को रजिस्टर्ड किया गया। इस संगठन की सक्रियता बढ़ती गई और बन्नूवाल नगर के अलावा बाहर के भी कई अन्य निर्माण मज़दूर इसमें शामिल होने लगे।

इस संगठन के कार्यकर्त्ता के तौर पर बन्नूवाल नगर के निवासी और ज़्यादा बैठकें, जागरूक अभियान (बन्नूवाल नगर और उसके बाहर) भी चलाने लगे। "बन्नूवाल नगर" सरस्वती विहार की एक बड़ी झुग्गी बस्ती थी। पिछले 30–35 सालों से लोग वहां रह रहे थे। अपना आशियाना बनाने के लिए उन्होंने कहां–कहां मेहनत मज़दूरी नहीं की तब जाकर परिवार को छत नसीब करा पाए। इस बस्ती में लगभग 1600 परिवार रहते थे। दिल्ली में राष्ट्रमंडल खेल 2010 में होने थे इसलिए

पूरे दशक में सन् (2000 से 2010 तक) शहर को साफ, झुग्गी मुक्त और विश्वस्तर का बनाने के लिए सरकारी प्राधिकरणों की ओर से जी तोड़ कोशिशें की जा रही हैं। इन प्राधिकरणों को और विभागों को मानो एक तय किया हुआ लक्ष्य मिला हुआ हो। शहर के हर कोने से झुग्गी बस्तियों को साफ करने के लिए सक्रियता से प्रयास हो रहे थे। इसी के चलते बन्नूवाल नगर की झुग्गी बस्ती के लोगों को भी सूचना मिली कि उनकी बस्ती तोड़ी जा सकती है। निर्माण मज़दूर पंचायत संगम के सदस्यों ने डी.डी.ए. के अधिकारियों के साथ रहकर खुद सर्वे करवाया ताकि कोई छूट ना जाए और डी.डी.ए.के अधिकारी गलत जानकारी दर्ज न कर दें, इसलिए डी.डी.ए. की हर टीम के साथ बस्ती के 8–10 लोग ज़रूर रहते थे। लेकिन दो दिन बाद डी.डी.ए. के सर्वे अधिकारियों ने अपनी मर्ज़ी से सर्वे करना शुरू किया। सर्वे प्रक्रिया के 2 साल बाद झुग्गी बस्ती के लोगों को सूचना मिली कि इस बस्ती को भी तोड़ दिया जाएगा (क्योंकि उन दिनों सर्वे करने के कुछ दिनों बाद झुग्गी बस्तियों को तोड़ने की मुहिम ज़ोर पकड़ चुकी थी)। हलाकि डी.डी.ए. के नियमानुसार कोई नोटिस किसी भी सार्वजनिक जगह पर नहीं चिपकाया गया, जिससे लोगों को सूचना हो पाती। बस्ती के लोगों को कुछ समझ नहीं आ रहा था। तब "निर्माण मज़दूर पंचायत संगम" के कार्यकर्त्ताओं ने एक बैठक की और ख़तरा केन्द्र से कहा कि "सूचना का अधिकार" का प्रयोग कर सही स्थिति का पता लगाया जाए। जब ये बात तय हो गई कि बस्ती को तोड़ा जाना है, तो इस पर विचार किया गया, कि इस समस्या से कैसे निपटा जाए, कि तोड़–फोड़ के समय होने वाले आर्थिक और सामाजिक नुकसान से बचा जा सके। इसके लिए ज़रूरी था कि स्थानीय पुलिस, डी.डी.ए और एम.सी.डी अधिकारियों के साथ मुलाक़ात की जाए और उनको ये बताया जाए कि बेदखली के समय जान और माल का नुकसान न हो। इसके लिए बार–बार विभिन्न दफ्तरों में मुलाकात की गयी। स्थानीय सरस्वती विहार पुलिस थाने में हर दूसरे तीसरे दिन 50–100 लोग जाते थे, थाने में समस्या रखते थे "कि यदि तोड़ फोड़ होती है तो यहां के लोगों के साथ किसी भी तरीके का अमानवीय व्यवहार न किया जाए, अन्यथा हम भी प्रतिरोध करेंगे।" थाने के एस.एच.ओ. (SHO) ने भी लोगों को आश्वासन दिया कि वह पूरी कोशिश करेंगे कि बेदखली होने के समय लोगों के साथ दुर्व्यवहार न हो, कार्यवाही अचानक न हो और हर घर का सामान सुरक्षित रहे। इधर आर.टी.आई. का जवाब आया तो यह निश्चित हो गया कि बन्नूवाल नगर की झुग्गी बस्ती ज़रूर तोड़ी जाएगी। इस बस्ती को तोड़ने के लिए जब डी.डी.ए. अधिकारी आए तो बन्नूवाल नगर के लोगों ने बलपूर्वक हटने से मना कर दिया। डी.डी.ए. अधिकारियों ने सरस्वती विहार थाने से और पुलिस बल मांगा। लेकिन थाने से ये जवाब मिला कि 'वे उनकी सुरक्षा के लिए चल सकते हैं, लेकिन बस्ती के लोगों के साथ मिलकर और बातचीत कर के ही बस्ती को तोड़ा जाए।' डी.डी.ए. अधिकारियों को भी बात माननी पड़ी। इसी बीच अपनी बस्ती को बचाने के लिए लोगों ने राजनैतिक स्तर पर प्रयास करने का मन बनाया। आखिरकार उसी दिन बस्ती के लोगों ने इकट्ठा होकर बैठकें की। बैठकों और अन्य कार्यवाहियों के लिए पैसे की समस्या आयी तो सभी मज़दूरों ने 20–20 रू. इकट्ठा किए और वी.पी.सिंह से मिलने की तैयारी की गयी। बस्ती में तकरीबन 1000 लोग इकट्ठा हुए। "निर्माण मज़दूर पंचायत संगठन" और साझा मंच के अन्य संगठनों के कार्यकर्त्ताओं को साथ लिया गया लेकिन उसी दिन सूचना मिली कि पूर्व प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह काफी अस्वस्थ है लिहाज़ा मुलाकात सम्भव नहीं हो पायी। खतरा केंन्द्र से सलाह मांगी गईं। तब ये तय हुआ कि अगर वी.पी.सिंह नहीं मिलते हैं तो क्यों न फिर सरकार के ही किसी मंत्री से बात की जाए। साथ ही तत्कालिन यू.पी.ए सरकार की अध्यक्ष

सोनिया गांधी से मुलाकात कर समस्या से अवगत कराने की बात तय की गयी।

लोगों में काफी जोश था और किसी भी कीमत पर वे अपनी बस्ती को बचाना चाहते थे जहां उन्हें काम मिला, जहां उन्होंने अपनी छत बनवायी, परिवार और समाज बनवाया जहां रहकर, अपनी सेवाएं देकर उन्होंने ज़मीन और बाज़ार दोनों की कीमतें बढ़ाईं। अब किसी बड़े भू–माफिया और सभ्रान्तों के लिए मेहनतकशों को ज़िन्दगी, घर, काम से बेदखल कर दिया जाए, ये बस्ती के लोगों को बिल्कुल मंजूर नहीं था। आवास छिनने से रोकने और संघर्ष कर अपना हक़ मांगने में कोई भी पीछे नहीं हटना चाहता था। दूसरी बात ये भी थी कि जहां बस्ती के लोग खुद ही इस संघर्ष में साथ आ रहे थे वहीं खतरा केन्द्र से नीतिगत मामलों में जानकारी लिए और संघर्ष को जीवंत रखने के लिए साझा मंच और निर्माण मज़दूर पंचायत संगम के कार्यकर्त्ताओं ने पूरा प्रयास किया। इन मेहनतकशों ने, जिनकी आय का मुख्य साधन ही दिहाड़ी पर निर्भर था, उन्होंने अपने काम पर जाना छोड़ कर, सरकार से बात करने को अहमियत दी। उन्हें ये अच्छी तरह मालूम था कि बस्ती टूटने का मतलब अपने जीवन की सारी मेहनत, खून पसीने की कमाई से वंचित हो जाना है। ये मुद्दा केवल घर का नहीं, ये मुद्दा उनके रोज़गार का भी है। ये मुद्दा उनकी टूटती सामाजिक स्थिति का भी है जिसे उन्होंने पिछले कई सालों में एक दूसरे के सुख दुख में शरीक होकर बनाया है। ये मुद्दा परिवारों के टूटने और बिखरने का भी है, बच्चों की शिक्षा उनके स्वास्थ्य का भी है। बस्ती टूटेगी तो लोग जाएंगे कहां ? क्या उन्हें रोज़गार मिल पाएगा ? क्या उनकी सामाजिक स्थिति बरकरार रह पाएगी ? जहां उन्हें भेजा जाएगा वहां उन्हें वे सारी मौलिक सुविधाएं (पानी, बिजली, स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवहन इत्यादि) उसी आसानी से प्राप्त हो पाएगी जो उन्हें शहर के अन्दर रहकर प्राप्त हुई है ? सोनिया गांधी और अन्य मंत्रियों से मिलने से पहले इन सभी मसलों पर चर्चा की गयी और इन्हें सरकार के सामने गम्भीरता से रखने पर विचार किया गया। ये लोगों के मौलिक हक़ों का मामला है, "हम इसे ऐसे ही नहीं छोड़ने वाले।" चार बसों का इंतजाम किया गया। 1600 परिवारों में हर कोई इसमें शामिल होना चाहता था लेकिन आखिर 500 लोग ही जा पाए। बस्ती के लोग सीधा कांग्रेस के केंन्द्रीय कार्यालय पहुंचे। कांग्रेस कार्यालय में हड़कम्प मंच गया। आनन–फानन में भारी पुलिस बल बुला लिया गया और लोगों को चारों तरफ से घेर लिया गया। तब लोगों ने तय किया कि सूचना अन्दर भेजकर इस समस्या के बारे में बात की जाए। तब कार्यालय में कांग्रेस के बड़े नेता अशोक गहलोत से मुलाकात की गयी। उन्होंने राय दी इस सम्बन्ध में केन्द्रीय मंत्री जयपाल रेड्डी और अजय माकन से मिलकर समस्या का हल निकल सकता है। 500 लोगों के एक साथ और अचानक सोनिया गाँधी के दफ्तर पहुंचने की कोई पूर्व सूचना न होने पर सरस्वती विहार के थानाध्यक्ष (SHO) को सस्पेंड कर दिया गया। मीडिया भी पीछे नहीं रहा और इस मुद्दे को अखबारों और टेलिविजन पर खूब "हाइलाइट" किया गया। अजय माकन और जयपाल रेड्डी ने लोगों से बात की। जयपाल रेड्डी ने बताया कि झुग्गी बस्ती तो ज़रूर तोड़ी जाएगी लेकिन लोगों को बवाना सुरक्षित पहुंचा दिया जाएगा। उन्होने आश्वासन दिया "हम नुकसान बिल्कुल नहीं होने देंगे" और लोगों को सुनवाई का मौका दिया जाएगा। जयपाल रेड्डी के इस आश्वासन के बाद लोगों में विश्वास की उम्मीद जागी कि यहां से हटने के बाद बवाना में उनके लिए सुरक्षित माहौल मिलेगा और आस–पास के औद्योगिक इलाके में काम भी मिल जाएगा। श्री रेड्डी के आश्वासन के बाद लोग वापस अपने घर लौटे। अप्रैल 2006 में बन्नूवाल नगर की इस झुग्गी बस्ती को तोड़ दिया गया और लोगों को बवाना में पुनर्वास के लिए भेज दिया गया।

लेकिन बवाना आकर उन्हें असली स्थिति का पता चला। बिल्कुल सुनसान इलाक़े में उनका पुनर्वास करवाया गया था। लोग अपने सामान और परिवार सहित गेहूं के खेतों में खड़े थे। न कोई टैन्ट, न पानी की सुविधा, न खाने पीने की व्यवस्था, डी.डी.ए. की गाड़ियां लोगों को उतारकर चली जाती थी। शहर से 35 किलोमीटर दूर काम और घर से वंचित लोगों को समझ नहीं आया कि ये "कैसा पुनर्वास है"। लेकिन शायद उनकी इस एकता और अभियान के ही दबाव का नतीजा था का नतीजा था कि लोगों को पुनर्वास के बहाने शहर के बाहर अमानवीय हालत में फेंक कर चले आने वाले डी.डी.ए. अधिकारियों ने वहां तत्कालिक (3–4 दिन बाद) हैलोजन लाइट की व्यवस्था की। साझा मंच की ओर से सभी लोगों के लिए खाने–पीने का इंतज़ाम किया गया। एम.सी.डी (दिल्ली नगर निगम) की ओर से अस्थायी पानी की व्यवस्था हुई और खड़ंजों और नालियों का काम शुरू हुआ। प्लाट का आबंटन एक महीने बाद शुरू हुआ और बन्नूवाल नगर के लगभग 1600 परिवारों में से सिर्फ 1150 को ही प्लाट मिल पाया। वो भी अगस्त महीने में जब बरसात भी अपने पूरे रौद्र रूप में थी और लोग भराव वाले पानी और कीचड़ में अपनी घर गृहस्ती को लगाए बैठे थे। प्लाट भले ही मिल गए थे, लेकिन क्या घर बनाने में वक्त नहीं लगता ? दूसरे घर बनाने के लिए पैसा कहां से आता जबकि काम छूट गया था, ऊपर से सुविधाओं का भी पूरी तरह से आभाव था। फिर भी लोगों ने काम ढूंढना शुरू किया। बहुत ही कम लोगों को आस–पास की फैक्ट्रियों में काम मिला। कुछ ने अपना स्वरोज़गार जैसे राजमिस्त्री या रेहड़ी पटरी इत्यादि लगाना शुरू कर दिया।

बन्नूवाल नगर के लोगों ने पूरी कोशिश की कि बस्ती के किसी भी परिवार को प्लाट से वंचित न होना पड़े, लेकिन बस्ती टूटने से पहले जो सर्वे किया गया था, उसी दौरान कुछ लोग डी.डी.ए की नीति के दायरे से बाहर हो गए। सबसे बड़ी बात ये कि इस बस्ती में भी बस्ती के टूटने की जानकारी आर.टी.आई. से मिली लेकिन बस्ती के लिए होने वाले सर्वे का कोई सार्वजनिक नोटिस नहीं लगाया गया था। जिससे कई ऐसे परिवार जो किसी कारणवश बाहर गए थे, उनका नाम सर्वे में नहीं आ पाया। बस्ती के लोगों के साथ रहते हुए भी डी.डी.ए अधिकारियों ने अपनी मर्ज़ी से फार्म में सूचनायें दर्ज कीं। इस कारण से जहां हर तरीक़े से योग्य पाए गए लोगों को प्लाट मिला वहीं उसी योग्यता के होते हुए लगभग 200 परिवार प्लाट आवंटन से वंचित हो गए।

केस स्ट्डी

रामादीन (उम्र 54 वर्ष)

रामादीन निर्माण मज़दूर हैं और बन्नूवाल नगर में भी यही काम करते थे। ऊपर से गिरने के बाद गम्भीर रूप से बीमार हो गये। यहां दिल्ली में इलाज कराया तो डॉक्टर ने लम्बा इलाज बताया। इलाज बहुत ज़्यादा मंहगा था। जिसकी वजह से वे गाँव चले गए क्योंकि काम भी नहीं कर पा रहे थे। गाँव में पैसे उधार लेकर और सरकारी डॉक्टर से परामर्श लेकर इलाज कराने लगे। जिन दिनों इलाज गाँव में चल रहा था, बस्ती में सर्वे शुरू हो गया। रामादीन की झुग्गी में उनका भतीजा और बेटा रहते थे। डी.डी.ए. अधिकारियों ने रामादीन के फोटो, और सारे दस्तावेज़ देखे। बेटे ने परेशानी भी बताई। लेकिन सर्वे के बाद जब प्लाट आवंटन की बारी आयी तो पता चला कि सर्वे रामादीन के भतीजे के नाम पर हो गया है। रामादीन ने अपने डॉक्टरी इलाज के कागज़, भतीजे का शपथ पत्र और सारे ज़रूरी दस्तावेज़ लेकर न जाने कितनी बार डी.डी.ए. पीतमपुरा और विकास सदन के चक्कर काटे। रामादीन बताते हैं "मैंने अपनी परेशानी और गरीबी का हवाला दिया। कई बार अफसरों के सामने रोया हूँ। अब तो आंसू भी सूख चुके हैं। झुग्गी टूटने के बाद, कैसे रोज़ी–रोटी कमाई है मैं ही जानता हूँ। लेकिन अगर मैं सही हूँ, तो मुझे मेरा हक़ मिलेगा और मैं बवाना के अपने भाई–बन्धुओं के संघर्ष में साथ हूँ।"

लीलावती (उम्र 50 वर्ष)

बन्नूवाल नगर में लीलावती और उनके पति रेहड़ी का काम करते थे। कमाई भी अच्छी खासी हो जाती थी। बीमार होने पर दवा, इलाज का भी इंतजाम आसान था लेकिन उनकी झुग्गी टूटने के बाद ज़िन्दगी अब सिर्फ वक्त के ही सहारे है। जिन दिनों उनकी बस्ती में सर्वे चल रहा था लीलावती के ससुर बीमार चल रहे थे। लीलावती और उनके पति उन्हें देखने गाँव गए बाद में उनकी मौत हो गई। सिर्फ दोनों पति–पत्नी ही झुग्गी में रहते थे। सर्वे के दिन तक वे लौट नहीं पाए। सर्वे में उनका नाम शामिल नहीं किया गया जब झुग्गी टूटी तो उन्हें पता चला कि सर्वे मे उनका नाम नहीं है। लीलावती ने अपने सारे कागज़ात हर दफ्तर में दिखाए। डी.डी.ए. अफसरों को अपने ससुर की मृत्यु का सबूत भी दिया लेकिन डी.डी.ए. अफसरों ने दस्तावेज़ों को मानने से इंकार कर दिया। अफसरों ने कहा कि "चाहे कितने भी दस्तावेज़ दिखा दो, हमारे सर्वे में नाम नहीं है तो, राष्ट्रपति भी प्लाट नहीं दिला सकता।" लीलावती कहती हैं "लेकिन मैं अपना हक़ लिए बगैर नहीं मानने वाली, इसलिए हमने उपराज्यपाल से लेकर डी.डी.ए के हर अधिकारी के साथ अपनी समिति के लोगों को लेकर मुलाक़ात की है और धरना, प्रदर्शन भी । हमारी दो बार सुनवाई हो चुकी है और उपराज्यपाल ने भी हमारे पक्ष मे फैसला दिया है। जबकि पहले हमें साफ मना किया गया था कि "हमें प्लाट नहीं मिलेगा"। लेकिन डी.डी.ए. के अधिकारी उन्हें प्लाट देने में अयोग्य करार दे रहे हैं।

उमेश सिंह (उम्र 62 वर्ष)

बन्नूवाल नगर में उमेश सिंह पेन्ट करने का काम करते थे, और वहीं आस–पास काम करते थे। उन्हें आस–पास काम मिलता था और परिवार का खर्चा आराम से चल रहा था। बन्नूवाल नगर से ही उमेश सिंह निर्माण मज़दूर पंचायत संगम का सदस्य रहे हैं और संस्था के सदस्य के तौर पर निर्माण मज़दूरों के अधिकारों के लिए काफी समय से संघर्ष करते रहे हैं। उन्होने कई तरह के संघर्ष देखे हैं और शामिल रहे हैं। बन्नूवाल नगर में जब उनका सर्वे हुआ तब उनके संगठन के सदस्यों ने डी.डी.ए. वालों से मिलकर सर्वे करवाया था लेकिन सर्वे के फार्म पर लिखा क्या जा रहा है ये डी.डी.ए. अधिकारी नहीं दिखाते थे। 2006 में जब बस्ती तोड़ी गई और सभी लोग बवाना आए तो पुनर्वास की हकीकत जानी। खेतों में, पानी में लोग रह रहे थे। टूटने से पहले उन्होनें काफी संघर्ष किया था कि प्लाट के लिए डिमांड लेटर हमारी झुग्गी तोड़ने से पहले मिल जाए। हालांकि प्लाट 6 महीने के भीतर ही मिल गया था। लेकिन इसके लिए उमेश सिंह ने सरकार से लेकर डी.डी.ए अधिकारियों तक से संघर्ष किया। उमेश सिंह कहते हैं "हमारी बस्ती के 1600 लोगों में से 1150 को प्लाट मिल चुके हैं। कुछ लोगों को 2010 में प्लाट आवंटित हुआ है और जो लोग ऐसे हैं, जिनके पास वैद्य दस्तावेज़ और सबूत हैं लेकिन किसी कारण से उन्हे प्लाट नही मिला उनके लिए हम ख़तरा केन्द्र के साथ मिलकर संघर्ष कर रहे हैं। किसी कारण से डी.डी.ए. के अधिकारी उन्हें प्लाट देने में अयोग्य करार दे रहे हैं। पता नहीं ये लोग कौन सी नीति की बात कह रहे हैं। उसी नीति से, उन्हीं दस्तावेज़ों के आधार पर एक को प्लाट मिल जाता है और दूसरे को नहीं।" हांलाकि उनको बवाना में प्लाट मिल चुका है, लेकिन अपने उन साथियों के लिए जिन्हें प्लाट नहीं मिला है, उमेश सिंह लगातार संघर्ष कर रहे हैं।

अध्याय 4

सावन पार्क

सावन पार्क, अशोक विहार – लोग यहां 1958 से ही रह रहे थे। इस झुग्गी बस्ती को समय समय पर कई बार तोड़ा गया। 1969 में जब ये तोड़ी गई तब भी जगह और काम की अधिकता होने पर लोग यहां पर बसते रहे। बढ़ते – बढ़ते सावन पार्क की झुग्गी 1500 परिवारों की एक विशाल झुग्गी बस्ती बन गई। इस बस्ती के बढ़ने का कारण आस–पास के बाजारों में काम का मिलना था, वहीं महिलाओं को भी घरों में तथा आस पास की फैक्ट्रियों में रोज़गार मिलता था। 1969 में कुछ परिवारों को यहां से हटाया गया और उन्हें वजीरपुर सहित दिल्ली के अन्य इलाकों में 25 वर्गमीटर की जगह भी प्रदान की गई थी। सावन पार्क की झुग्गी बस्ती के पास ही एक अनाधिकृत पक्की कालोनी (सत्यवती कालोनी) धीरे–धीरे विकसित होती गई। लेकिन दिल्ली में चल रही बेदखली की हवा में सत्यवती कालोनी भी आ गई। इस अनाधिकृत कालोनी को तोड़ने के लिए नोटिस भी आए। लेकिन जैसा कि सावन पार्क के लोगों का कहना है कि तब सावन पार्क की झुग्गी बस्ती को तोड़ने के लिए कोई नोटिस नहीं था। डी.डी.ए या एम.सी.डी की ओर से कभी किसी भी तरह का इस सम्बन्ध में कोई सर्वे भी नहीं हुआ। हां, सर्वे होते तो थे लेकिन वे अन्य योजनाओं/स्कीमों को लेकर अकसर होते रहते थे। यहां तक कि झुग्गी तोड़ने से 1 साल पहले तक पक्की सड़कें बन गई थीं। लेकिन 2003 में सत्यवती अनाधिकृत कालोनी पर बेदखली का जो खतरा मंडरा रहा था, अचानक वह सावन पार्क झुग्गी बस्ती की ओर मुड़ गया। यहां के निवासियों की माने तो यह खुराफात सत्यवती कालोनी के लोगों से मिलकर डी.डी.ए अफसरों ने की। अगस्त 23, 2006 को अचानक डी.डी.ए अफसरों ने सावन पार्क बस्ती पर भारी पुलिस फोर्स के साथ धावा बोल दिया। एकदम सुबह–सुबह हुई इस कार्यवाही ने लोगों को बिल्कुल भी संभलने का मौका तक नहीं दिया। उस समय यहां के परिवारों के लिए विकट समस्या खड़ी हो गयी। क्योंकि अगर उन्हें कोई नोटिस मिलता तो वे अपने जाने की तैयारी भी करते लेकिन बिना किसी सूचना के ही डी.डी.ए अफसर बुलडोज़र और पुलिस फोर्स के साथ आ गए। घरों में ज़्यादातर महिलाएं और बच्चे थे, क्योकि पुरूष सुबह ही काम पर निकल गए थे। बुलडोज़र और पुलिस बल को देखकर महिलाएं और बच्चे काफी दहशत में थे। अफसरों और पुलिस वालों ने बेदखली की कार्यवाही के दौरान गाली गलौच की और अभद्रता दिखाई। अफसरों ने सिर्फ एलान किया कि झुग्गी खाली कर दो, अपना अपना सामान निकाल लो हम झुग्गी तोड़ रहे हैं और झुग्गी को तोड़ना शुरू कर दिया जाता। तोड़–फोड़ की कार्यवाही इतनी तेजी से हुई कि लोग अपना सामान भी नहीं निकाल सके और बुलडोज़र की वजह से मकान के साथ–साथ उनका न केवल रोजमर्रा की चीजें बल्कि बेहद कीमती सामान और आवश्यक दस्तावेज़ जमींदोज़ हो गई। जिन पुरूषों को जो आस–पास के ही जगह काम कर रहे थे, सूचना मिलने पर पहुंचे तो

पुलिस ने उन्हें झुग्गियों में घुसने नहीं दिया। महिलाएं चीख पुकार कर रही थी और बच्चे दहशत और आंसूओं के साथ अपने भविष्य को मिट्टी में मिलता देख रहे थे। पुरूषों ने अपने परिवार और सामान बचाने के लिए झुग्गियों में घुसना शुरू किया तो पुलिस ने उन्हें पीटना शुरू कर दिया। महिलाओं के विरोध करने पर महिलाओं से भी बुरी तरह मारपीट की गई। शाम तक सावन पार्क झुग्गी एक तिहाई टूट चुकी थी। चूंकि यह बड़ी झुग्गी थी इसलिए डी.डी.ए ने इसे तीन बार तोड़ा और हर बार बगैर नोटिस के एकाएक हमला किया।

जब डी.डी.ए अफसर अपनी निर्दयता का तमाशा दिखाकर और लोगों के घर और जिन्दगी को तबाह कर चले गए, तब झुग्गी वालों को कुछ समझ नहीं आया कि आखिर वे जाए कहां। उनसे सिर्फ इतना कहा गया कि ''तुम बवाना जाओ, वहां तुम्हें प्लाट मिल जाएगा।'' सिर्फ कुछ ही परिवारों को अफसरों ने बेदखली की पर्ची दी। लेकिन पुरूषों के मुकाबले महिलाओं के नाम ज़्यादा पर्चियां हैं, जो इस बात का सबूत है कि पुरूषों की गैर मौजूदगी में ही इस झुग्गी बस्ती को तोड़ा गया। डी.डी.ए और एम.सी.डी की नीति के मुताबिक ऐसा नोटिस भेजना था लेकिन नहीं भेजा गया। सार्वजनिक जगह पर कोई सूचना नही लगाई गई थी जिससे बेदखली वाले दिन पुरूष घरों पर होते। उन्हें अपना सामान खोने का डर नहीं रहता। लोग रातभर खुले में परिवार सहित अपने ही बनाए घरों के मलबे पर बैठे रहे और फिर अगले दिन बवाना की ओर रूख कर दिया। हालांकि सरकारी नियम नीति जो बेदखल किए गए लोगों को पुनर्वासित जगह पर भेजने का प्रावधान करती है, यहां भी इस नियम का खुला उल्लंघन किया गया। सावन पार्क झुग्गी को तोड़ते समय और तोड़ने के बाद किसी भी तरह के कानूनी, नीतिगत या मानवीय पक्ष को बिल्कुल ही त्याग दिया गया था। सिर्फ लोगों को बेदखली की पर्ची थमा दी गयी। लेकिन वो भी सिर्फ कुछ ही लोगों को हर किसी को नहीं।

जब लोग बवाना पहुंचे तो यहां हालात और ज़्यादा खराब थे। नहर से लगती ज़मीन पर गहरे गड्ढे थे और पूरी बवाना जे.जे. कालोनी पानी में डूबी हुई थी। बरसात भी रह रहकर हो रही थी। हालांकि यहां पहले से बेदखल किए गए परिवार रह रहे थे जैसे यमुना पुश्ता के लोग। लेकिन ये लोग खुद बहुत ही आभावों और अमानवीय परिस्थितियों में जी रहे थे। जगह–जगह बरसात का पानी भी कई सारी बीमारियां फैला रहा था और बीमारियों की ज़द में आकर कई लोग इलाज के अभाव में दम तोड़ रहे थे। बरसात का मौसम होने की वजह से पीलिया, हैज़ा, मलेरिया इत्यादि बीमारियां मच्छरों, गन्दे और जमा हुए पानी से हो रही थी। सावन पार्क के भी एक दो लोग इस वजह से यहां आने के कुछ ही दिनों बाद मर गए क्योंकि इलाज का समुचित प्रबन्ध नहीं हो पाया। यहां आने के बाद परिस्थितियों को संभालने की कोशिश लोगों ने की। वापस शहर जाकर तिरपाल, पॉलीथीन और खाने पीने का ज़रूरी सामान लेकर आए। जहां कहीं थोड़ी बहुत सूखी जगह मिली मजबूरन अपना टैन्ट लगाया। एक तो जमा हुआ पानी, ऊपर से मच्छरों ने जीना दुश्वार किया हुआ था। यहां आने के बाद परिवार चलाने के लिए काम ढूंढना भी ज़रूरी था। कई लोगों ने अपने परिवारों का इंतज़ाम न होने तक वापस अपने गांव भेज दिया और अपने लिए काम की तलाश करने लगे।

बवाना इंडस्ट्री इलाके में काम नहीं मिलता था क्योंकि यहां जितनी भी थोड़ी बहुत औद्योगिक

ईकाईयां थीं वहां पहले से ही मज़दूर थे। लिहाज़ा कई लोगों ने वापस दिल्ली जाने का मन बनाया और सावनपार्क या दिल्ली के बाकी इलाकों में किराए का मकान लेकर अपनी पुरानी नौकरी या काम पकड़ लिया तो कुछ ने नए काम ढूढंना शुरू किया।

बवाना में कई महीनों तक इन लोगों की हालत शरणार्थियों के जैसी हो गई। बवाना में छत मिलना मुश्किल तो था ही अब तो रोज़ी–रोटी के भी लाले पड़ने लगे। लेकिन सरकारी अधिकारियों ने उनकी तरफ ध्यान नहीं दिया।

सावन पार्क झुग्गी बस्ती के लोगों की जितनी सामर्थ्य थी वे सरकारी वायदों की आस में 1 से 2 महीने तक टिके रहे लेकिन इधर सरकारी महकमें में हड़कम्प मचा हुआ था। दरअसल दिल्ली में बस्तियों को तोड़कर पुनर्वासित करने की योजना जिस तेज़ी से चलाई जा रही थी ज़मीन के दलालों ने भी उतनी तेज़ी से सक्रियता दिखाते हुए अवैध खरीद फरोख्त शुरू कर दी। जब डी.डी.ए ने ज़मीन/प्लाट आबंटन की प्रक्रिया में रूचि दिखाई तब अशोक मल्होत्रा केस दिल्ली और देश में चर्चा का विषय रहा। दरअसल विधानसभा में एक कैन्टीन चलाने वाला अशोक मल्होत्रा दिल्ली में पुनर्वासित कालोनी में आवंटित होने वाले प्लाटों की धांधली करने लगा। अपराध में डी.डी.ए के अधिकारियों सहित कई और बड़े नाम भी शामिल थे। बस्तियों को तोड़ने और उनके निवासियों को पुनर्वास बस्ती में प्लाट देने के लिए तोड़ते समय एक डेमोलिशन स्लिप दी जाती है जिसके आधार पर नीति अनुसार तय किए गए दस्तावेज़ों को साक्ष्य मानकर प्लाट के योग्य पाया जाता है । फिर लीज़ पर प्लाट के कब्जे के लिए डिमांड लेटर (पॉजिशन लेटर) दिया जाता है। लेकिन इस पूरी प्रक्रिया से पहले डी.डी.ए या एम.सी.डी बस्तियों का सर्वे करके सर्वे रिपोर्ट तैयार करती है। यही प्रक्रिया अनियमितताओं, धांधली और भू–माफिया को बढ़ावा देती है। क्योंकि सर्वे प्रक्रिया में बस्ती के कई परिवारों को शामिल नहीं किया जाता लेकिन पुनर्वास कालोनी में प्लॉट ज़्यादा काट दिए जाते हैं। बाद में इन्ही प्लॉटों को ज़्यादा पैसे लेकर किसी और को बेच दिया जाता है। सावन पार्क का तो कई बार सर्वे हुआ लेकिन प्लॉट के लिए हो रहा है या किसी अन्य योजना के लिए कभी जानकारी नहीं दी गयी। डेमोलिशन स्लिप जैसै बन कर आयी, उसी समय डी.डी.ए के उत्तरी क्षेत्र पीतमपुरा के उपायुक्त व अधिकारियों ने बवाना में प्लाट आवंटन में जमकर हेरा–फेरी की। एक ही प्लाट को दो–दो बार बेचा गया और कई बार एक ही व्यक्ति को अलग–अलग जगहों पर दो बार प्लाट का आवंटन रिश्वत लेकर किया गया। मीडिया में बात आने पर अशोक मल्होत्रा पकड़ा गया और इस पूरे फर्जीवाड़े की जांच का काम सी.बी.आई को सौंप दिया गया। लेकिन सावन पार्क झुग्गी बस्ती के लोगों की मुसीबतें भी इसी के साथ शुरू हो गईं। अशोक मल्होत्रा के केस के साथ ही ऐसी कई बस्तियों के लोग जिनकी बस्तियों का इस सम्बन्ध में अशोक मल्होत्रा के केस से बिना किसी कारण से, प्लाट आवंटन से वंचित हो गए। क्योंकि इतने साल बाद भी सीबीआई की जांच अभी खत्म नहीं हो पायी है।

दूसरी ओर प्लाट का हक पाने के लिए सावनपार्क झुग्गी बस्ती के निवासी, जितने भी बवाना पुनर्वास कालोनी में रह गए थे, (लगभग 75–80) उन्होंने कई बार डी.डी.ए दफ्तरों के चक्कर लगाए, कई बार अपमानित किए गए, अपना ही हक पाने के लिए अधिकारियों के सामने उन्हें रोना भी पड़ा, लेकिन काफी समय तक डी.डी.ए के अधिकारियों ने उन्हें इस आश्वासन पर बैठाए

रखा कि उन्हें प्लाट का आवंटन शीघ्र कर दिया जाएगा। सावन पार्क झुग्गी के निवासियों ने छोटी मोटी बस्ती की समस्याओं से निपटने के लिए भी कभी सावन पार्क झुग्गी बचाओ समिति बनाई थी पुनर्वास कालोनी में आने के बाद जो भी थोड़े बहुत लोग इस समिति से ताल्लुक रखते थे, उन्होंने कोशिश और थोड़ी दौड़ भाग कर बवाना में पुराने दस्तावेज़ों के आधार पर राशन दिलाने में अहम् भूमिका निभाई। लगभग 8 महीने तक राशन मिलने के बाद वह भी बन्द हो गया।

जब कुछ महीनों तक प्लाट नहीं मिला तो सावनपार्क झुग्गी बचाओ समिति के लोगों ने इकट्ठा होकर पीतमपुरा दफ्तर में अधिकारियों से मुलाकात की। आखिरकार सावन पार्क झुग्गी बस्ती के लिए डी.डी.ए ने नोटिस लगाया कि जिन लोगों की झुग्गियां 23.08.06 को हटाई गई है वे 08. 12.06 तक दस्तावेज़ों को जमा करें। लेकिन अगस्त महीने में जब बरसात अपने चरम पर थी तब से 4 महीने के अन्दर बस्ती के लोग काम न मिलने और गन्दगी तथा खुले में रहने से बचने के लिए दिल्ली वापस जा चुके थे। सावनपार्क के 75–80 झुग्गीवासी ही बवाना में रह गए। लेकिन डी.डी.ए ने जब प्रक्रिया शुरू की तो एक–एक करके सब को अयोग्य करार देते गए। डीडीए दस्तावेज़ों के अनुसार कुल 971 झुग्गियों तोड़ी गयी थीं। जिसमें से 1 से लेकर 750 नम्बर तक झुग्गियां अवैध थीं और यह ज़रूरी नहीं कि उन्हें वैकल्पिक प्लाट मिल सके क्योंकि ये झुग्गियां सरकारी ज़मीन पर बनी हुई थीं। डीडीए ने अगस्त 2006 में झुग्गी को तोड़ा और एक साल तक वैरीफिकेशन की कार्यवाही को लटकाए रखा। काम छूट जाने और आवास नहीं मिलने से लोगों को दिहाड़ी मज़दूर बनना पड़ा और परिवार का पेट पालने के लिए रोज़ काम पर जाना पड़ता था। इसके साथ ही अपने ही हक के लिए डीडीए दफ्तरों के हज़ारों चक्कर लगाते और इस वजह से उन्हें या उनके परिवार को उस दिन भूखे रहना पड़ता लेकिन कभी डी.डी.ए. ने कोई सही सूचना नहीं दी। चाहे वह मल्होत्रा केस हो जिसे सी.बी.आई के सुपुर्द किया जा चुका था या फिर उनकी अपनी कार्यालय की कार्यवाही। लिहाजा प्लाट मिलने में देरी होने की वजह से बस्ती के लोगों ने आरटीआई डालकर (बस्ती टूटने के लगभग ढाई साल बाद) पता लगाने की कोशिश की कि आखिर उन्हें प्लाट क्यों नहीं आंबटित किए जा रहे हैं। तब इस आर.टी.आई. में खुलासा हुआ कि उनका केस सीबीआई में है क्योंकि सावन पार्क के कुछ लोगों को दोहरा आ. बंटन (डबल अलॉटमेंट) हुआ है। डीडीए का कहना था कि सावनपार्क के कुछ परिवारों को 1990 के दशक में औद्योगिक शाखा डीडीए द्वारा अशोक विहार फेज 4 और अन्य जगह पर पहले ही प्लाट आवंटित किए जा चुके हैं। साथ ही 1958 में बसी हुई बस्ती 1957 में बने डीडीए द्वारा अवैध रूप से बनी बताया गया और बस्ती के तोड़ने का कारण हाईकोर्ट का आदेश बताया। तब से लेकर आज तक सावन पार्क झुग्गी बस्ती के लोग आज भी अपने प्लाट के लिए संघर्षरत है। इन लोगों को कहना है कि वे कोई भी सबूत देने को तैयार है कि उन्हें कहीं भी कोई भी प्लाट दिल्ली में आंबटित नहीं हुआ। सावन पार्क के निवासियों की झुग्गियां नहर के किनारे से सटी हुई हैं। बरसात के पानी का जमाव हो जाता है क्योंकि नहर से लगी ज़मीन नीची है और गड्ढे बन गए हैं। स्त्रियों और पुरूषों को अपनी दैनिक दिनचर्या निपटाने के लिए बहुत दूर जाना पड़ता है और बच्चे इसके लिए नहर का सहारा लेते हैं। ज़्यादातर बच्चे नहर के आस पास खेलते हैं और कई बच्चे डूब भी चुके हैं। सावनपार्क के 70–75 झुग्गी निवासी पॉलिथीन या टैन्ट लगाकर परिवार के साथ रहते हैं। कुछ लोग जो पहले फैक्ट्री में काम करते थे मजबूरीवश रेहड़ी ठेली या अकेले थैला टांगकर रोजमर्रा के सामान घूम–घूमकर बेचने लगे हैं। औरतें जो पहले सावन

पार्क में रहते हुए कपड़े सिलना, खिलौने बनाना या कोठियों में जाकर काम करती थी, अब उनके पास कोई काम नहीं है लिहाज़ा उनकी पारिवारिक आय बुरी तरह प्रभावित हुई हैं और घर के मुखिया का काम भी छूट गया है।

केस स्टडी

सुरेन्द्र कुमार (उम्र 58 वर्ष)

निवासी सावन पार्क अभी बवाना में रह रहे हैं, उनके साथ के ज़्यादातर लोग वहीं वज़ीरपुर या सावनपार्क में ही वापस लौट गए। सुरेन्द्र कुमार कहते हैं जब यहां आया था यहां कुछ भी नहीं था जब मेरा घर तोड़ दिया गया। पत्नी बीमार थी, सारा सामान चला गया। बीमार पत्नी और दो बच्चों को साथ लेकर उनको बवाना भेज दिया गया। सावन पार्क में रेहड़ी लगाकर सामान बेचते थे और शाम को फैक्ट्री में काम भी कर लेते थे। उनको 6,000–7,000 रूपए मिल जाते थे तब पत्नी का इलाज भी हो जाता था। यहां रेहड़ी से ज़्यादा नहीं निकलता, फिर भी जीने लायक हो ही जाता है। बवाना आने पर पत्नी की हालत बिगड़ गई। अस्पताल दूर था और यहां कोई सुविधा नहीं थी जब वो घर पाने के लिए डीडीए के चक्कर लगा रहे थे तभी उनकी पत्नी गुजर गई। यह पूछने पर कि बच्चों को पढ़ा पाते या नहीं ? सुरेन्द्र कहते हैं "बच्चों को तो जरूर पढ़ाऊँगा, भले ही एक वक्त का खाना न खांऊ। बच्चों को गरीबी और अपमान की जिन्दगी नहीं जीने दूंगा। मेरी तो झुग्गी टूटी, सब कुछ बर्बाद हो गया।"

रामजीलाल (उम्र 65 वर्ष)

रामजीलाल सावन पार्क के उन झुग्गी निवासियों में जो बवाना में रह रहे हैं, सबसे ज़्यादा सक्रिय और अनुभवी व्यक्ति हैं। सावनपार्क झुग्गी बचाओ समिति उन्होंने अपने प्रयासों से बनाई थी और अब भी अपने झुग्गी बस्तियों को प्लाट दिलवाने के लिए लोगों को संगठित करते रहते हैं। रामजीलाल बताते हैं ऐसा कोई नहीं होगा जिससे मुलाकात न की हो, नेताओं से लेकर उपराज्यपाल तक लेकिन पता नहीं क्यों हमसे दुश्मनी निकाली जा रही है, वे कई नेताओं और अधिकारियों के संज्ञान पत्र दिखाते हैं कि हर एक ने आश्वासन भर दिया है।

डीडीए ने पहले झूठ कहा कि आप लोगों के दस्तावेज़ देखकर प्लाट दिया फिर कहा कि तुम लोग इसके अयोग्य हो, अब कह रहे हैं कि केस सीबीआई में है। सावन पार्क के बाकी लोगों की तरह रामजीलाल को भी पिछले पांच साल से टहलाया जा रहा है। उनका घर और काम सब छूट गया। दो जून की रोटी चलाने के लिए घर में पापड़ बनाकर उन्हें बेचते हैं। जिससे घर का खर्च चलता है। यहां आने से पहले रामजीलाल ऑटो चलाते थे बाद में फैक्ट्री में काम करने लगे। उनकी पत्नी धागे बनाने का काम करती थी। अब आमदनी ठप है, प्लाट मिला नही। अब उन्होने लोगों को संघर्ष में शामिल किया है। सावन पार्क के वे परिवार जिन्हें कोई प्लॉट नहीं मिला है उन लोगों को उपराज्यपाल ने आश्वासन दिया था कि जिन लोगों को कहीं कोई प्लाट नहीं मिला है वे अपना शपथ पत्र दायर करें तो उनको प्लाट देने पर विचार किया जाएगा। रामजीलाल उन दावेदारों में से एक हैं जिन्होंने अपने शपथ पत्र जमा कर दिए हैं फिर भी अभी तक कोई कार्यवाही नहीं हुई है। रामजीलाल कहते हैं "6 साल से अभी तक कुछ नहीं हुआ। ये कौन सा नियम है कि अपराध करें मल्होत्रा और सजा भुगते हम गरीब लोग। "

चन्दादेवी (उम्र 60 वर्ष)

चन्दा देवी की जब झुग्गी टूटी घर पर कोई नहीं था। पुलिस वाले डंडे मार रहे थे और भद्दी–भद्दी गालियां दे रहे थे। बच्चों और औरतों पर भी हाथ चला देते थे और डंडे मारकर झुग्गी से भगा देते थे। वहां (सावनपार्क) में थी तो पति अपना काम करते थे और वे धागे तोड़ने का काम करती थी। बच्चे पल गए लेकिन यहां आने के बाद सब कुछ लुट गया। वे अभी कोई काम नहीं करती। उनके पति दिन भर में पापड़ बेच कर जो कमाते हैं उसी से उनका गुज़ारा चलता है। अगर बीमार हो जाओ तो आस पास कोई अस्तपताल भी नहीं है। चन्दा देवी कहती हैं "यहां तो परेशानी ही परेशानी है यहां आकर तो कुछ भी नहीं मिला। डीडीए वालों ने हमारी दुनिया उजाड़ दी। पहले आस बंधाई कि प्लाट देंगे। अभी हमारे पास है नहीं अब कह रहे कि केस सी.बी.आई. में है। हमें तो मालूम भी नहीं कि सीबीआई में क्यों है, हमने क्या गुनाह किया है जो 7 साल से हमें ऐसे रहने को मज़बूर किया गया है।"

अध्याय 5

पश्चिम विहार

"संजय गाँधी कैम्प झुग्गी बस्ती", पश्चिम विहार

पश्चिम विहार में "संजय गांधी कैम्प" झुग्गी बस्ती सन् 1984 में बसी थी। इस झुग्गी बस्ती के साथ ही उसी क्षेत्र में और भी कई झुग्गी बस्तियां थीं। 1987 तक आते–आते संजय गाँधी कैम्प में 93 परिवार रहने लगे। पश्चिम विहार में उच्च मध्य वर्ग और मध्य वर्ग के लिए कई सारे अपार्टमेंट बने थे। ये झुग्गी बस्तियां इन्हीं अपार्टमेंट के बीच में बसी हुई थीं। संजय गाँधी कैम्प के निवासी ज़्यादातर निर्माण मज़दूर या बेलदारी (राज–मिस्त्री) का काम करते थे और पश्चिम विहार के अलावा दिल्ली में कई जगह निर्माण मज़दूर के तौर पर काम किया है।

संजय गाँधी कैम्प झुग्गी बस्ती बहुत ही कम जगह में बसी हुई थी। इतनी कम जगह में 93 परिवारों का एक साथ रहना काफी मुश्किल था। लेकिन कैम्प के लोगों से बात करते हैं तो बताते हैं "कि कभी भी कोई भी मुश्किल नहीं आयी सब लोग मिल बांट कर ही सुविधाओं का लाभ उठाते थे। इन 93 परिवारों के लिए ज़िन्दगी उतनी आसान नहीं थी, कम जगह में झुग्गी निवासी इसलिए भी रह पाए क्योंकि, वे एक दूसरे से काफी मिल–जुलकर रह रहे थे। कैम्प में पानी के लिए कभी कभार ही नाराज़गी होती थी लेकिन आम तौर पर कभी झगड़ा फसाद नहीं हुआ। इन 93 परिवारों के बीच में सिर्फ एक ही शौचालय था।

लेकिन आम दिनचर्या निपटाने के लिए उन्हें काफी मशक्कत करनी पड़ती थी, खासकर महिलाओं को। लोग (पुरूष) ज़्यादातर बाहर काम करते थे तो वहीं महिलाऐं आस–पास की कोठियां घरों में घरेलू काम कर परिवार का खर्चा चलाती थी। यहां के निवासी दयाराम बताते हैं कि "हम लोग आधी–आधी रात तक काम करके घर लौटते थे। लिहाज़ा हमेशा ज़्यादातर लोग जगते रहते थे। हमारे समय में इन अपार्टमेंट में कभी चोरी नहीं हुई।" दयाराम बताते हैं कि "इस अपार्टमेंट में रहने वाली महिलाएं और लड़कियों के लिए सुरक्षा थी। रात या दिन में कभी भी आने जाने में कोई दिक्कत नहीं होती थी।"

वास्तविकता ये है कि यहां के लोगों के इन अपार्टमेंट में रहने वाले परिवारों से ताल्लुकात काफी अच्छे थे। क्योंकि ज़्यादातर कैम्प की महिलाएं इन्हीं घरों में काम करती थीं। यहां के एक और निवासी (जो इस समय बवाना में न रहकर, पश्चिम विहार में ही किराये के मकान में रहते हैं) बताते हैं कि अपार्टमेंट्स के कुछ लोगों ने हमारे लिए पैसा इकट्ठा कर शौचालय और बाकी सुविधाओं की बात की थी। लेकिन पता नहीं क्या हुआ कि हमारी झुग्गी की टूटने की नौबत आ गई।"

दिल्ली शहर में चल रही बेदखली की हवा संजय गांधी कैम्प झुग्गी बस्ती तक पहुंच गई और एक दिन कुछ पुलिस वाले आकर झुग्गी बस्ती के प्रधान को उठाकर ले गए। इससे पहले लगभग 1 साल पहले सबका सर्वे हुआ था और झुग्गी बस्ती के लोगों को बताया गया कि उन्हें किसी दूसरी जगह प्लॉट दिया जाएगा। जिस रात पुलिस कैम्प के प्रधान को उठा कर ले गयी उसी

के दूसरे दिन एक नोटिस चिपका कर झुग्गी तोड़ने की सूचना दे दी गई। उसी दिन सभी लोगों ने अपना सामान निकालना शुरू कर दिया क्योंकि नोटिस में अगले ही दिन झुग्गी को तोड़ने की सूचना थी। इसी के साथ ही दो और झुग्गी बस्तियां जो संजय गांधी कैम्प झुग्गी बस्ती के पास ही थी, उन्हें भी तोड़ने की सूचना जारी कर दी गयी। जब लोगों ने प्रधान से इस बारे में पूछा तो उसने जवाब दिया कि पुलिस ने हमसे कहा है कि झुग्गी तुम लोग खुद ही खाली कर दो ताकि हमें दिक्कत न हो।" लिहाज़ा 28 जून 2007 को दो और बस्तियों के साथ ही संजय गाँधी कैम्प तोड़ दिया गया। लेकिन तोड़ने से पहले इस तरह की कोई सूचना नहीं दी कि इन बेदखल लोगों को भेजना कहां है। जब लोगों ने डी.डी.ए. अधिकारियों से पूछा तो उन्होंने कहा कि बवाना जा सकते हो, लेकिन इस ज़मीन पर नहीं रह सकते हो। यहां बनी झुग्गियां डी.डी.ए. की ज़मीन पर है और अवैध रूप से बनी हुई थीं।

किसी को भी कुछ समझ नहीं आया। अपना सारा सामान और परिवार लेकर बिना छत के कहाँ–कहाँ रहेंगे लेकिन कुछ लोगों की राय पर बस्ती के सभी लोग बवाना चलने को राजी हुए और लगभग 1–2 दिन के भीतर सभी 93 परिवार बवाना पुनर्वास कालोनी आ गए। लेकिन यहां और बड़ी मुसीबतें इन लोगों का इंतजार कर रही थीं।

बवाना पुनर्वास कालोनी पहुंचने से पहले ही बरसात शुरू हो चुकी थी, जिसके चलते अस्थायी छत का इंतजाम भी मुश्किल दिख रहा था लेकिन बेदखल किए गए दूसरी बस्ती के लोगों के साथ मिलकर पश्चिम विहार संजय गाँधी कैम्प झुग्गी बस्ती के परिवारों ने भी अपनी झुग्गियां डाल लीं।

कैम्प के हरजू बताते हैं, यहां आकर तो कुछ समझ में ही नहीं आ रहा था कि क्या करें, बच्चों की पढ़ाई का तो कोई भविष्य ही नहीं सूझा और उससे पहले तो सवाल ये था कि खायेंगे क्या, और रहेंगे कैसे ?" क्योंकि पूरे बवाना जे.जे. कालोनी में पानी भरा हुआ था और गन्दगी के ढेर लगे हुए थे। थोड़ा बहुत रहने लायक इंतज़ाम करने के बाद बस्ती के लोगों ने काम ढूढंना शुरू किया, लेकिन काम की तलाश पूरी न होती देख ज़्यादातर लोगों ने अपना परिवार अपने गाँव या शहर में वापस भेज कर या साथ लेकर दिल्ली में ही किराए का मकान लेकर रहने लगे। लेकिन वे लोग जो राज मिस्त्री का और निर्माण मज़दूर का काम करते थे, वे बवाना में ही रूक गए क्योंकि बवाना पुनर्वास कालोनी में कई बस्तियों के लोग जिन्हें प्लॉट मिला हुआ था वे अपने मकान बनवा रहे थे। इन लोगों को यहां थोड़े दिन के लिए काम मिल गया। धीरे–धीरे जब बवाना में रहने के बाद इन परिवारों ने खुद को परिस्थितयों में ढाल लिया तो फिर प्लॉट आवंटन के लिए डी.डी.ए. दफ्तर सुभाष नगर के चक्कर काटने शुरू किए। इधर बवाना में परिस्थितयां भी विपरीत थी। बवाना में जिस जगह उन्होंने झुग्गियां डालीं वहां बड़ी–बड़ी घास और कंटीले पेड़ थे। उनके घरों में रात में चोरियां भी हो जाती। संजय गांधी कैम्प झुग्गी बस्ती के लोगों द्वारा डी.डी.ए. दफ्तर के कई चक्कर काटने के बाद जब डी.डी.ए. सुभाषनगर में मुलाकात की तो वहां से उनको जानकारी दी "कि आप लोगों की बस्ती को एम.सी.डी. वालों ने अधिसूचित (नोटिफाई) नहीं किया है और हम केवल उन्हीं बस्ती के लोगों को प्लॉट आवंटित करेंगे जिन्हें एम.सी.डी. ने अपने रिकार्ड में अधिसूचित किया हो। एम.सी.डी. ने उन्हें अधिसूचित क्यों नहीं किया तो पूछने पर उन्होंने जवाब दिया कि ये तो एम.सी.डी. वाले ही बता सकते हैं। एम.सी.डी. के अधिकारियों

ने भी यह नहीं बताया कि उन्होंने इस बस्ती को अधिसूचित क्यों नहीं किया। वहीं दूसरी तरफ पश्चिम विहार की ही एक दूसरी बस्ती जो सुप्रिया अपार्टमेन्ट्स के पास थी उन्हें प्लॉट देने का सिलसिला धीरे–धीरे शुरू कर दिया गया था। डी.डी.ए. दफ्तर और एम.सी.डी. कार्यालय से कोई समुचित जवाब न मिलने पर कैम्प के निवासियों ने स्थानीय नेताओं और सांसदों और विधायकों के भी चक्कर लगाए। स्थानीय सांसद ने भी सिर्फ कारण पूछ कर (लिखित में) अपने कर्त्तव्य की

इतिश्री कर ली और उन्हें भी वही जवाब दिया गया कि चूंकि झुग्गी एम.सी.डी. ने नोटिफाई नहीं की, लिहाज़ा, नियमानुसार, संजय गाँधी कैम्प झुग्गी बस्ती के निवासियों को प्लाट नहीं दिया गया है।

इधर उन्हें छत भी नसीब नहीं हो रही थी, दूसरी तरफ उनकी आर्थिक स्थिति भी दयनीय हो गयी। महिलायें जो पश्चिम विहार में घरों में काम करके परिवार की आय में बढ़ोत्तरी करती थी, यहां आकर उनका काम छूट गया। बच्चों की पढ़ाई–लिखाई तो पूरी तरह से चौपट हो गयी, गन्दे पानी के जमाव और कूड़े के ढेर से गन्दगी और बीमारियों से भी लोग परेशान हो गए। महिलाओं के लिए भी कम दिक्कतें नहीं है। पहले एम.सी.डी. के पानी का टैंकर आता था, 5–6 महीने बाद वह भी आना बन्द हो गया। इसलिए पानी के लिए महिलाऐं और बच्चे अभी भी दूसरों के घरों में जाते हैं। पहले लोग पानी दे देते थे, लेकिन अब मोटर से अपने वाले पानी को देने से संकोच करते हैं, उन लोगों का कहना है, कि हमारा बिजली का बिल बहुत ज़्यादा बढ़ जाता है, पानी के लिए हम मना नहीं करते लेकिन इतना बिल कैसे भरेंगे। उन लोगों ने कैम्प के लोगों से भी कहा कि वे भी थोड़ा बहुत पैसा दे दिया करें। हालांकि अभी तक लोगों को बगैर बिजली के बिल का पैसा दिए पानी मिल जाता है, वह भी अपने–अपने समझ के आधार पर लोग उन्हें पानी दे देते हैं।

पिछले 3–4 साल से उसी तरह से (पश्चिम विहार) संजय गाँधी कैम्प झुग्गी बस्ती के लोग अपनी ज़िन्दगी जी रहे हैं। इन लोगों की माने तो हमें अपार्टमेंट वालों से और उन्हें हमसे कोई दिक्कत नहीं थी। लेकिन फिर भी कुछ लोगों ने डी.डी.ए. से मिलकर हमारी झुग्गी तुड़वा दीं। पीड़ा व्यक्त करते हुए पार्वती कहती है, "बवाना में तो हम सिर्फ नरक भोग रहे हैं।

केस स्टडी

जगदीश (उम्र 60 वर्ष)

जगदीश 26 साल से संजय गाँधी कैम्प झुग्गी बस्ती में रह रहे थे। जब वे दिल्ली में काम करने आए, और जब काम मिला तो उन्होनें यहीं अपना घर बना लिया। जब आए थे तो वह जगह बिल्कुल खाली थी। इसी इलाक़े में उन्होनें अपनी मेहनत, मज़दूरी कर कई मकान और फ्लैट बनवाये। 1984 में झुग्गी बस्ती बनी और 1986 में राशनकार्ड बनवाने गए। लगातार काम मिलता रहता था। अच्छा खासा खर्चा चल जाता था। बवाना आने के बाद तो जगदीश बेकार ही बैठे हैं, कहीं काम लगता है तो दो जून की रोटी मिल जाती है, परिवार में और लोग कहीं–कहीं काम ढूंढ कर खर्चा चला रहे हैं। जगदीश कहते हैं "हमें तो कुछ भी नहीं पता कि हमें वहां से निकाला क्यूं और अभी तक हमें ज़मीन क्यों नहीं मिली, हमारा तो जाड़ा, गर्मी, बरसात, इसी पन्नी (पॉलीथीन) से बनी झुग्गी में ही कट जाता है।"

पार्वती (उम्र 45 वर्ष)

ikorh d¨ if'pe fogkj lt; xk/kh dEi >Xxh cLrh e jgr 20-22 Lkky g¨ x, FkA xjhc Fkh yfdu lc dN vklku FkkA cktkj] vLirky] Ldy d fy, T;knk nj ugh tkuk iMrk Fkk] ogk ,d gh 'k©Pkky; ijh cLrh e Fkk] yfdu flQ v©jr¨ d fy, Fkk] ckn e edku oky¨ u ml gVok fn;kA yfdu rc Hkh d¨Ã fnDdr ugh Fkh] ikorh dgrh g cokuk vku d ckn r¨ cl ftUnxh th jgh gA vxj d¨Ã chekj g¨ tk, r¨ dgk tkÅ] ifr d¨ Hkh d¨Ã [kkl dke ugh feyrk] gekj cPp¨ dh i<kÃ r¨ NV gh xÃA ikuh vkrk ugh g] nlj¨ d ?kj l ikuh ykuk iMrk g] o¨ Hkh l© ckj feUUkr dj¨A o y¨x Hkh fdruk ikuh nx] dgr g] gekjk fcy cgr vkrk gA irk ugh dc ge ?kj fEkyxkA

बाबूलाल (उम्र 41 वर्ष)

15 साल से पश्चिम विहार संजय गाँधी कैम्प झुग्गी बस्ती में रह रहे थे। उनके चार बच्चे हैं। उन्हें अपार्टमेंट वालों से और अपार्टमेंट वालों को उनसे कोई दिक्कत नहीं थी। राजमिस्त्री का काम था, काम भी खूब मिलता था, जिन्दगी अच्छी चल रही थी। अब तो बस दिन कट रहे हैं। काम मिलता नहीं, शहर जाने पर काम मिलेगा या नहीं कोई गारन्टी नहीं है। ऊपर से सौ पचास रूपये खर्च और हो रहे हैं। बीमार होते हैं तो कहां जाएं। अस्पताल दूर है, पानी मिलता नहीं, गन्दगी है। बाबूलाल कहते हैं हमारी तो जिन्दगी ही बर्बाद हो गयी। कहां काम करें, फैक्ट्रियों में भी काम नहीं मिलता, यहां आकर तो बस लुटे ही लुटे हैं।

अध्याय 6

पुनर्वास नीति विरोधाभासी

सरकार की पुनर्वास नीति को समझना इसलिए ज़रूरी है क्योंकि बवाना ही नहीं बल्कि पूरी दिल्ली के ज्यादातर झुग्गीनिवासियों को इसी प्रक्रिया के दायरे मे लाकर आवास के अधिकार से वंचित कर दिया जाता है। वास्तव मे ये प्रक्रिया इसलिए चलाई जाती है कि बस्ती में रहने वाले उन्हीं झुग्गी वालों को प्लाट मिले जिसका डी.डी.ए. या एम.सी.डी. के सर्वे में नाम हो और जिसके पास नीति के अनुसार तय किए गए दस्तावेज हों। ये सर्वे प्रक्रिया उस ज़मीन की मालिकाना हक़ वाली एजेन्सी के साथ मिलकर करने की बात कही गई है, जिसकी ज़मीन पर बस्ती बसी हो। झुग्गीनिवासी का सर्वे में नाम ज़रूर होने की योग्यता के अलावा निम्न योग्यताओं का भी होना आवश्यक है जैसे दिल्ली में कहीं कोई प्लॉट मुखिया या परिवार के किसी सदस्य के नाम नहीं होना चाहिए, ऐसे व्यक्ति को जिसकी झुग्गी घर के रूप में और व्यवसायिक दोनों हों प्लॉट का हक़दार है लेकिन अगर झुग्गी केवल व्यवसायिक है तो ऐसे व्यक्ति को प्लॉट नहीं मिलता। इसके साथ ही प्लॉट पाने के हकदार व्यक्ति के पास निम्न दस्तावेज़ होने चाहिए :–

1. राशनकार्ड – 31 जनवरी 1990 से पहले या 1 दिसम्बर 1998 से पहले का हो।
2. 31.09.1990 का दिल्ली प्रशासन द्वारा जारी पहचान पत्र और मैटालिक टोकन
3. चुनाव पहचान पत्र 31 दिसम्बर 1990 से पहले या बाद का और 1998 से पहले का
4. इसके अलावा कोई भी ऐसा दस्तावेज़ जो डी.डी.ए. के सक्षम अधिकारी का मान्य हो। (एम.सी.डी. नीति बच्चे के स्कूल के सर्टिफिकेट और जन्म मृत्यु प्रमाण पत्र को भी मान्य करार देती है)। इन योग्यताओं के अलावा अयोग्यता निर्धारित करने वाली शर्तों में नीति कहती है कि झुग्गी को :
   - खाली/टूटी हुई/बेची हुई/किराए पर/गैर मालिकाना नहीं होनी चाहिए
   - झुग्गी रास्ते में, सड़क पर या फुटपाथ पर इत्यादि (चलने के अधिकार को ध्यान में रखते हुए) नहीं होना चाहिए
   - जिस झुग्गी निवासी के पास सरकार द्वारा तय किए गए दस्तावेज़ न हो, अयोग्य निर्धारित कर दिया जाएगा और एसे व्यक्ति को प्लॉट नहीं मिलेगा।
   - और अगर सारी योग्यताएं पूरी होती हैं लेकिन डी.डी.ए. या एमसीडी के सर्वे में नाम नहीं आया तो उस व्यक्ति को प्लॉट नहीं मिलेगा।

सर्वे प्रक्रिया में धांधली और हक़दार व्यक्ति को उसके आवास के अधिकार से वंचित कर देना, पुनर्वास बस्तियों के लोगों की व्यथा रही है। जब उन्हें मजबूरन पुनर्वास बस्ती में पॉलिथीन से बनी झुग्गी में टैन्ट लगाकर रहना पड़ता है और अधिकारी उन्हें वहां भी अवैध करार दे देते हैं। उनके पास प्लाट पाने के सारे दस्तावेज होने के बावजूद प्लाट नही मिलता।

इसके अलावा प्लॉट पाने के लिए 7,000 रू. फीस है तो प्लॉट का अधिकार 10 साल और 5 साल की लीज़ पर दिया जाता है। साथ ही 1990 से पहले वाले दस्तावेज़ धारकों को 18 वर्गमीटर का और 1990 के बाद तथा 1998 से पहले के दस्तावेज़ धारकों को 12.5 वर्गमीटर का प्लॉट आवंटन करने की बात नीति कहती है।

2010 के अन्त में पुनर्वास और बेदखली के लिए दिल्ली सरकार के अर्न्तगत एक नया विभाग

बना – दिल्ली शहरी आश्रय सुधार बोर्ड (डीयूएसआईबी)। अब प्लॉट की जगह बोर्ड बहुमंजिली इमारतों में 25 वर्गमीटर के फ्लैट का आवंटन करता है। लेकिन यहां बवाना पुनर्वास कालोनी की व्यथा का इतिहास डी.डी.ए. की उस नीति का परिणाम है जिसका खामियाज़ा आज भी लोग भुगत रहे हैं। और इसी नीति की दुहाई देकर डी.डी.ए अधिकारी पिछले 6 सालों से बवाना पुनर्वास कालोनी के लोगों को उनके मौलिक अधिकार से वंचित किए हुए हैं। लेकिन एक लम्बे ज़मीनी संघर्ष के अनुभव के चलते बवाना पुनर्वास कालोनी के लोगों ने ये ठान लिया कि सड़क पर संघर्ष के अलावा आवास नीतियों को भी चुनौती देना ज़रूरी है। जिसके लिए कागज़ी तौर पर भी मज़बूत होकर सरकारी प्राधिकरणों को अपने साथ होने वाले अन्याय के प्रत्युत्तर दिया है।

✓ नीति – अनीति और कानून

90 के दशक मे आर्थिक उदारीकरण ने दिल्ली सहित देश के तमाम बड़े और जनसंख्या के दबाव से घिरते शहरों में ज़मीन और आवास, उत्पादन और बाज़ार सुविधायें और उनका वितरण, अधिकार और न्याय, नीतियां और कानून के साथ विधायिका और लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ मीडिया को एक खास संभ्रात वर्ग की ओर ढकेल दिया है। हर तरह से विशेषाधिकारों से लैस आधुनिक सुविधा सम्पन्न भोगी वर्ग अपने हक़ से उन सभी मामलों में दखलदांज़ी की हैसियत रखता है जिससे शहर को उनके आशानुरूप ही बनाया जाए। इन्हीं लोगों के विशेषाधिकार के संरक्षण को बनाए रखने के लिए कभी एशियाड के नाम पर, राष्ट्रमंडल खेलों के नाम पर, साफ और हरी दिल्ली, पर्यावरण संरक्षण के नाम पर, कानून व्यवस्था की स्थिति को बनाए रखने के नाम पर तरह–तरह के शगूफे छोड़े जाते हैं। इन्हीं के चलते सुविधाओं के निजीकरण से शहर के गरीब मेहनत कश के रोज़गार, आवास से बेदखली बढ़ी है। मुक्त अर्थव्यवस्था के आगमन के साथ ही शहरों को परिवर्तित करने की प्रक्रिया ने इस काम को काफी तेजी से बढ़ाया है। क्योंकि खुले बाजार की नीति के चलते लोगों को बाजार के भरोसे छोड दिया गया और अर्थव्यवस्था को उत्पादक कार्यों की बजाए सेवा क्षेत्र की ओर मोड़ दिया गया। सरकारें अपनी ज़िम्मेदारियों से मुक्त होने की कोशिश करने लगीं, और मूलभूत सुविधाऐं (जैसे बिजली, पानी, शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यादि) निजी कम्पनियों को सौंपा जाने लगा। कहने का मतलब ये है कि जिसके पास जितना ज़्यादा पैसा है वह इस शहर में मिलने वाली मूलभूत सुविधाओं का ज़्यादा से ज़्यादा उपयोग कर सकेगा। क्योंकि निजी कम्पनियां सिर्फ मुनाफा कमाने के लिए ही काम करती हैं इसलिए सेवाओं के बदले ज़्यादा पैसा वसूलने की कोशिश की जाती है। लेकिन तब उन लोगों का क्या होगा जो मूलभूत सुविधाओं के लिए पैसा नहीं दे पाएंगे ? इसलिए क्यों न उन्हें ही शहर से बाहर निकाल दिया जाए ? मेहनतकश लोगों को उस ज़मीन से बेदखल कर दिया जाए जिसे उन्होंने अपने रहने से, अपने कामों से और अपने द्वारा दी जाने वाली सेवाओं से कीमती बनाया है। ज़मीन को खुले बाज़ार में मंहगें दामों पर बेचकर ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाना ही सरकारी प्राधिकरणों का एकमात्र लक्ष्य रहा है। इसलिए शहर में बेदखली पिछले 20 साल में तेजी से बढ़ी है और बेदखल किए गए लोगों को बसाने का काम बहुत ही कम किया गया है। लोगो को उजाड़ा गया ज़्यादा से ज़्यादा संख्या में और पुनर्वास किया गया बहुत ही कम संख्या में। लेकिन लोकतंत्र में ये मुमकिन नहीं कि जनता द्वारा चुनी सरकारें और उसके अधीनस्थ प्राधिकरण आम लोगों के जीवन, आवास, रोज़गार और सुविधाओं/सेवाओं पर सीधा हमला करें।

लिहाज़ा इसके लिए उन्हें कानूनों, नीतियों, अदालती आदेशों, पर्यावरण, सुविधाओं की कमियां, योजनाओं का सहारा लेना पड़ता है और इन सबको इस तरह से प्रचारित किया जाता है कि सबसे ज़्यादा दोषी शहरी गरीब ही दिखता है, और नई सदी के पहले दशक के शुरूआत् में ही यह साफ दिखाई देने लगा।

बात दिल्ली की करें तो दिल्ली को हरा–भरा बनाने के नाम पर यमुनापुश्ता के 35,000 परिवारों को उजाड़ दिया गया और उन लोगो को दिल्ली की कई पुनर्वास बस्तियों मे भेजा गया। राष्ट्रमंडल खेलों को "राष्ट्रीय गौरव" कहा गया और इस गौरव की क़ीमत चुकाई मेहनतकशों ने और पिछले 5 सालों में ही दिल्ली के कई इलाक़ों से 15000 परिवारों को उजाड़ दिया गया। दिल्ली में नई सदी के पहले दशक में राष्ट्रमंडल खेल और दिल्ली को विश्वस्तरीय बनाने की मुहिम तथा दिल्ली की मेहनतकश आबादी के दु:स्वप्न साथ–साथ संघर्षरत रहे। सन् 2001 में 2021 तक की भावी तस्वीर का लेखा जोखा मास्टर प्लान में तैयार किया गया जिसमें दिल्ली को 2021 तक एक टिकाऊ "वर्ल्डक्लास" शहर बनाने का लक्ष्य रखा गया है। इसके अलावा सार्वजनिक निजी सामुदायिक भागीदारी, कमजोर तबके को पर्याप्त आवास, छोटे उद्योगों और असंगठित क्षेत्रों के सहित झुग्गी बस्तियों को भी लक्षित किया गया है।

✓ नीति का खेल

मास्टर प्लान 2021 दिल्ली को विश्वस्तरीय शहर बनाने पर ज़ोर देता है और इसका ज़िम्मा अन्य सरकारी विभागों, दिल्ली सरकार के साथ–साथ दिल्ली विकास प्राधिकरण, दिल्ली नगर निगम और नई दिल्ली नगर महापालिका को सौंपा गया है। स्लम् सुधार अधिनियम 1956 जिसके अर्न्तगत पर्यावरण सुधार, स्वस्थान सुधार और पुनर्वास शामिल है उसके तहत् इन विभागों ने नांगलोई, मदनगीर, सीलमपुर, वज़ीरपुर, मादीपुर इत्यादि पुनर्वास कालोनियों को बसाया था। लेकिन तब लोगों को मिलने वाले प्लाट का आकार बड़ा था, प्लाट 99 साल की लीज पर मिलता था, कोई पैसा जमा नही करना होता था केवल सालाना लीज़ का न्यूनतम किराया (रू. 16 प्रति) जमा करना होता था। घर–घर मूलभूत सुविधाएं पहुंचाने की कोशिश की जाती थी। लेकिन सन् 1990 के बाद से ये तस्वीर पूरी तरह से बदलने लगी। 2004 की नई पुनर्वास नीति के अर्न्तगत सिर्फ बेदखल करने को प्राथमिकता दी गयी। दिल्ली विकास प्राधिकरण (डी.डी.ए.) और दिल्ली नगर निगम (एम.सी.डी.) ने पुनर्वास शहर की परिधि से बाहर कर दिया जिसमें बवाना, मदनपुर खादर, नरेला, पप्पनकला, भलस्वा जैसी पुनर्वास कालोनियां शामिल हैं। एमसीडी और डीडीए की पुनर्वास नीति की चर्चा करना इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि पुनर्वास कालोनियों में आवास, रोज़गार और अमानवीय परिस्थितियों के पीछे इस नीति की भूमिका बहुत बड़ी है। इसलिए यह ज़रूरी है कि बवाना पुनर्वास कालोनी के परिप्रेक्ष्य लोगों द्वारा इसी पुनर्वास नीति को चुनौती दिए जाने के कारण को समझा जाए। इस नीति में बस्ती को उजाड़ने और उसे पुनर्वासित करने के लिए एक सर्वे प्रक्रियां है। नीति कहती है कि सूचना (सर्वे की) सार्वजनिक स्थान पर लगाई जाए। जिनका सर्वे न हो पाए, उनका दुबारा सर्वे किया जाए ताकि मानवीय आधार पर कोई भी आवास के अधिकार से वंचित न रहे। लेकिन समस्या की असली जड़ यहीं से शुरू होती है। स्थ. ानीय सर्वे, जोनल आफिस डी.डी.ए. के डिप्टी डायरेक्टर कार्यालय के निरीक्षण अधिकारी (फील्ड ऑफिसर) और एम.सी.डी. के स्थानीय कार्यालय के सर्वेकर्त्ता करते हैं। ज़्यादातर सर्वे बस्तियों के

प्रधानों की मिली भगत से किया जाता है। बवाना के लोगों का कहना है कि सर्वे अधिकारी कभी पूरी बात नहीं सुनते थे। सर्वे फार्म पर क्या लिख रहे हैं ये कभी भी उन्हें दिखाया नहीं जाता था। बन्नूवाल नगर के लोग कहते हैं कि जब सर्वे हुआ तो हम अपने दस्तावेज़ लेकर बाहर आये तब बोला गया कि आपका सर्वे हो चुका है। कागज़ की ज़रूरत नहीं है। हम अनपढ़ क्या जानते, भरोसा कर लिया, बाद मे पता चला कि सर्वे किसी और के नाम से हुआ था सर्वे अधिकारियों की गलती के चलते हमें प्लॉट आज तक नहीं मिला। सर्वे अधिकारियों के हाथ में सर्वे की पूरी प्रक्रिया और अधिकार थमा देने से अधिकारी अपनी मर्ज़ी से सर्वे फार्म भरते हैं। किस को क्या टिप्पणी देनी है यह सर्वे करने वाले अधिकारी के उपर निर्भर होता है और जिसको सर्वे किया जाता है उसको खुद भी नहीं पता लगता कि उसके बारे मे क्या लिखा जा रहा है। इसी सर्वे प्रक्रिया में ही कई लोगों को प्लॉट प्रक्रिया में ही कई लोगों को प्लॉट योग्यता से बाहर कर दिया जाता है। इसी मौक़े का फायदा बस्ती में रह रहे दलाल उठाते हैं और अधिकारियों से मिलकर पुनर्वास कालोनियों में प्लॉटों की हेराफेरी करते हैं। बवाना के मामले में देखा जाए तो सभी प्रकार से योग्य होते हुए लोग प्लॉट से वंचित हैं। वहीं यदि गहराई से छानबीन की जाए तो ऐसे लोग भी प्लॉट के हकदार बन गए जो योग्यताएं पूरी नहीं करते थे।

अध्याय 7

l?k"k

दिल्ली के कई इलाक़ों से विस्थापित किए गए बवाना के लोगों ने अपने प्लाट के लिए न केवल सुभाषनगर, पीतमपुरा, डी.डी.ए दफ्तर बल्कि डी.डी.ए दिल्ली के मुख्य कार्यालय विकास सदन के साथ ही दिल्ली के उपराज्यपाल के दफ्तर के कई–कई चक्कर काटे। लेकिन इन लोगों को सिर्फ आश्वासन मिलता कि प्लाट मिल जाएगा या फिर उनके द्वारा पेश किए गए दस्तावेज़ को (नीति के अनुसार तय किए गए दस्तावेज़) डी.डी.ए. अधिकारी अपने द्वारा किए गऐ सर्वे रिपोर्ट के आधार पर मानने से इंकार कर देते थे। बवाना के लोगों को कई मोर्चों पर एक साथ संघर्ष करना पड़ रहा था। इसकी वजह ये थी कि अलग–अलग बस्तियों से बेदखल होकर आए परिवारों को एक ही जगह याने बवाना पुनर्वास कालोनी में झुग्गी डालकर रहना पड़ रहा था, और इन सबकी एक ही पीड़ा थी बेरोज़गारी, परिवार की सुरक्षा और आवास का न होना। सुविधाओं का अभाव, अस्वस्थकर माहौल में फैलती बीमारियां और सरकारी अधिकारियों का अमानवीय रवैये से इन लोगों को लड़ना पड़ रहा था। दूसरी तरफ डी.डी.ए. अधिकारी न केवल भेदभाव कर रहे थे बल्कि बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार और दलालों का धंधा भी खूब चला। कुछ को तो वोटर आई.डी.कार्ड, वी.पी.सिंह टोकन, दिल्ली प्रशासन कार्ड, राशन कार्ड, एम.सी.डी द्वारा प्राप्त जन्म/मृत्यु प्रमाण पत्र, बच्चे के स्कूल के सर्टिफिकेट या अन्य दस्तावेज़ जिन्हें सक्षम अधिकारी मान सकता है, के आधार पर प्लाट मिल जाता। वहीं इन्हीं कागज़ों को दिखाकर भी कुछ लोगों को प्लॉट नहीं मिला। लोगों का कहना है कि बवाना में ही नहीं, बल्कि कई और पुनर्वास बस्तियों में ऐसे लोगों को भी प्लॉट मिल गया जिनके पास कोई वैध दस्तावेज़ नहीं है, या फिर उन्होंने बड़ी रिश्वत देकर प्लॉट अपने नाम करवाया है। जब भी लोग प्लॉट पाने के लिए डी.डी.ए. के दफ्तरों में जाते तो हर ज़ोनल दफ्तर में उनसे रिश्वत मांगी जाती, किसी से 10,000 किसी से 20,000रू. किसी से 25,000 रू. मांगे जाते। जिनका रोज़गार ही छिन गया हो, दिहाड़ी मुश्किल से 100 रू. से 120 रू0 मिलती हो, घर में खाने के लाले पड़े हों, वे लोग ये पैसा कहां से लाते। जबकि ये लोग प्लॉट पाने के हर तरह से योग्य थे ,क्योंकि डी.डी.ए. द्वारा तय किए गए दस्तावेज़ों और कट ऑफ डेट की सीमा के अन्दर लोग आते थे। लेकिन जिन्हें प्लॉट नहीं मिलना चाहिए, उन्हें मिला, जिन्हें मिलना चाहिए उन्हें नहीं मिला। डी.डी.ए. दफ्तरों के चक्कर लगाकर और दस्तावेज़ होने पर भी ये लोग आवास से वंचित थे। सब कुछ किया लेकिन डी.डी.ए. अधिकारियों ने इनकी नहीं सुनी। घर उजाड़ने वाले डी.डी.ए ने लोगों को कोई राहत नहीं दी।

✓ लोग जुड़ते गए

बवाना पुनर्वास कालोनी में दिल्ली के कई इलाकों से तोड़ी गई बस्तियों के लोग रहते हैं। अलग–अलग बस्तियों से आए इन लोगों को न केवल आर्थिक बल्कि सामाजिक हानियां भी उठानी पड़ी। उनका अपना समाज बिखर गया था और अपने मौलिक अधिकारों से भी वंचित कर दिए गए थे। लिहाज़ा अकेले अलग–अलग प्राधिकरण और सरकारी व्यवस्था से जूझना और अधिकारियों, भूमाफियाओं और दलालों के संगठित तंत्र से लड़ना संभव नहीं था। इसलिए खुद संगठित होना बहुत जरूरी था ताकि अपने खिलाफ हर तरफ से विरोधी तंत्र, नीतियों और कानून से मोर्चा लिया जा सके। इसके लिए दो चीजों की जरूरत थी। एक तो ऐसा प्लेटफार्म मिले जहां अपनी समस्याओं को कह सके और उन्हें औरों का भी सहयोग मिले। साथ ही एक ऐसे मार्गदर्शक

की भी ज़रूरत थी जो ज़मीनी लड़ाई के साथ ही कानून और नीतियों को कटघरे में खड़ा कर, प्राधिकरण को घेरे और नीतिगत स्तर पर उनके संघर्ष का जायज परिणाम दे पाए। दिल्ली में कई और पुनर्वास बस्तियों में तमाम सामाजिक संगठन काम करते हैं। इन में से कई का ताल्लुक दिल्ली के एक बड़े गठजोड़ "साझा मंच" से भी था।

दिल्ली में कई और पुनर्वास बस्तियों में तमाम सामाजिक संगठन काम करते हैं। इन में से कई का ताल्लुक दिल्ली के एक बड़े गठजोड़ "साझा मंच" से भी था। साझा मंच 1999 में बना था, जब दिल्ली में आवास के साथ, रोज़गार आधारित बेदखली बढ़ी थी। ऐसे में इन तमाम संगठनों ने जिन्हें बड़े जनसमर्थन की जरूरत थी मिलकर "साझा मंच" बनाया था। रेहड़ी पटरी के अधिकार से लेकर रोजी रोटी और पुनर्वास सहित बहुत से मुद्दों पर साझा मंच का सरकार के साथ परामर्श हुआ। मंच में लगभग 60–70 संगठन शामिल थे। इस सदी के पहले दशक में जब बेदखली बढ़ने लगी और परिवारों को शहर से हटा कर 30–40 किमी. दूर नरेला, भलस्वा, मदनपुर खादर, बवाना जैसी जगहों पर भेजा जा रहा था तब लोगों के बीच में जागरूकता फैलाने और संघर्ष के लिए एक बेहतर संगठित दल बनाने के लिए साझा मंच के कई दल विभिन्न पुनर्वास कालोनियों में जा–जाकर बैठकें करने लगे। बवाना में भी पुनर्वास किए गये कई बस्तियों के लोगो का ताल्लुक पहले से "साझा मंच" से था।

आमतौर पर "साझा मंच" द्वारा इन पुनर्वास कालोनियों में जो बैठकें होती थीं उनमें लोग बिजली, पानी, स्वास्थ्य, साफ–सफाई, काम पर जाने से होनेवाली शारीरिक और आर्थिक तकलीफों, राशन, स्कूल इत्यादि के मसले पर चर्चा होती थी और रणनीति तय की जाती थी। साझा मंच के कई साथी जिनमें बन्नूवाल नगर के कई निवासी शामिल थे, उनकी एक नियमित मासिक बैठक होती थी इसके अलावा साझा मंच की अपनी अलग मासिक बैठक होती थी, जिसमें अपने–अपने क्षेत्र से ताल्लुक रखने वाले संगठन बैठकर मुद्दों पर आगे की रणनीति बनाने व सहयोग करते थे। इसके बाद बवाना में सन् 2008 में हुई एक बैठक में ही ये मुद्दा निकलकर आया कि आवास पहली प्राथमिकता हो क्योंकि बिना आवास की सुविधाएं भी किस काम की ? लिहाज़ा आवास के मुद्दे पर कुछ सक्रियता दिखानी चाहिए। इस मुद्दे को लेकर साझा मंच के साथियों ने बवाना में और बैठकें की और समस्या की जड़ को तलाशने की कोशिश की कि आखिर बेदखल किए लोगों को पुनर्वासित करने में सरकारें आना–कानी क्यों करती है। साझा मंच के साथियों के संघर्षों का अनुभव और उनके द्वारा विभिन्न मुद्दों पर किए गए शोधों से कई बातें साफ हो चुकी थीं :–

1. सरकार के पास पुनर्वास नीति तो है, लेकिन इसका स्वरूप जन विरोधी है साथ ही यह नीति अधिकारियों को अपनी मनमानी करने की छूट देती है।
2. बेदखली के लिए कुछ प्रावधान है। लेकिन प्रशासन और अदालतें उन्हें नजरअंदाज करते हैं।
3. बड़े शहरों, खासकर दिल्ली में बेदखली की मुख्य वजह, शहरों को हरा–भरा और साफ दिखाने की मुहिम की नतीजा है। जिसके पीछे लोंगों द्वारा विकसित ज़मीन को खाली करवाकर उसे मंहगे दामों में बेचने का इरादा भी साफ दिखता है।
4. सन् 2010 में दिल्ली में होने वाले राष्ट्रमंडल खेलों को "राष्ट्रीय गौरव" के तौर पर पेश किया गया, और इसी की आड़ में सरकारी ज़मीनों को निजी बिल्डर्स को देने के लिए बेदखली को बढ़ावा दिया जा रहा है।

5. इस दौरान दिल्ली उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय भी गरीब विरोधी रहे हैं, क्योंकि ज़्यादातर बस्तियों को प्राधिकरणों ने "अदालत के आदेश के तहत" ही हटाया है।
6. राष्ट्रमंडल खेलों को 2010 में कराने की जल्दबाज़ी के चलते बेदखली ज़्यादा तेजी से बढ़ी है।
7. पर्यावरण सुरक्षा, कानून व्यवस्था, सुविधाओं की कमी इत्यादि के लिए सरकार और प्राधिकरणो द्वारा ज़्यादातर झुग्गी बस्ती के लोगों को ही दोषी ठहराया जाता है, जबकि प्रत्यक्ष में सबसे ज़्यादा पर्यावरण की सुरक्षा यही लोग करते हैं। सुविधाओं का भी सबसे कम उपयोग झुग्गीवासी ही (पानी, बिजली, ज़मीन और पर्यावरण के लिए हानिकारक तत्व) करते हैं। ये सारी बातें साझा मंच के साथियों द्वारा किए गए कई शोधों से साफ हो गया था। लिहाज़ा इस पूरे मुद्दे को (आवास, पुनर्वास) क्यों न एक अभियान की तरह लिया जाए और सरकार की आवास सम्बन्धी नीतियों को चुनौती दी जाए। साथ ही पुनर्वास को लेकर संगठित रूप से अभियान और जागरूकता फैलाई जाए और वैकल्पिक नीतियों पर काम किया जाए।

बवाना में साझा मंच की "बस्ती प्रचार समिति" काम करती थी। साझा मंच के सचिवालय के तौर पर ख़तरा केन्द्र काम करता था। ख़तरा केन्द्र ने साझा मंच के साथ मिलकर ज़मीन और आवास के मुद्दे पर शोध और जानकारी देने का काम किया है और सरकारी नीतियों पर लोगों की समझ बढाने को लेकर साझा मंच ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अतः इस मुद्दे को लेकर के साझा मंच के सदस्यों के साथ बवाना के लोगों ने कई बार बैठक की और, फिर इस पूरे मुद्दे को व्यवस्थित रूप देने की बात उठी। इसलिए तय हुआ कि बवाना में जिन लोगों का अभी तक पुनर्वास नहीं हुआ है उन बस्तियों के लोगों से दस्तावेज़ जमा किए जाऐं और उनकी लिस्ट बनाई जाए। फिर इन सभी लिस्ट का गहराई से अध्ययन कर पुनर्वास न होने के असली कारण को पता लगाया जाए।

आवास, पर्यावरण और विभिन्न सामुदायिक मुद्दों पर काम करने का साझा मंच के कार्यकर्त्ताओं और ख़तरा केन्द्र के सदस्यों का एक लम्बा अनुभव रहा है। दिल्ली में ज़मीन और आवास को लेकर ख़तरा केन्द्र के साथ मिलकर साझा मंच के साथियों द्वारा किए गए शोध और विश्लेषण में भी बताते हैं कि दिल्ली में आवास और ज़मीन की समस्या उतनी विकराल नहीं है कि शहरी गरीबों को ज़मीन से बेदखल कर उनकी ज़मीनों पर कब्जा किया जाए। दरअसल आवास की समस्या इसलिए है कि दिल्ली के लिए बनने वाले मास्टर प्लान (सन् 1962–1981, 1981–2001, 2001–2021) में डी.डी.ए. तथा अन्य सरकारी विभागों के अर्न्तगत आने वाले आवास निर्माण के लक्षित प्रस्तावों को पूरा नहीं किया गया। लोगों को घर मुहैया कराने के लिए प्रत्येक मास्टर प्लान में, हर 20 साल में जितने घर बनाने का लक्ष्य डी.डी.ए. या अन्य सरकारी विभागों को दिया गया था, घर उससे बहुत ही कम बनाए गए। सन् 2001 तक डी.डी.ए.को 23.7 लाख घर बनाने थे लेकिन आकड़े बताते हैं कि डी.डी.ए. ने तकरीबन 11 लाख ही घर बनाए। लिहाज़ा आवास की समस्या इसलिए आई क्योंकि डी.डी.ए., एम.सी.डी. और अन्य विभागों व मंत्रालय के अधीन, किए गए प्रस्तावों को पूरा नहीं किया जा सका। दिल्ली मास्टर प्लान 2021 के अनुसार डी.डी.ए. को 24 लाख घर और बनाने हैं। देखना ये है कि जब पहले के मास्टर प्लान के अनुसार घर बनाने का लक्ष्य पूरा नहीं हुआ तो आगे ये कितना सम्भव हो पाएगा ? सन् 1951 में दिल्ली में जहां मात्र 64,000 लोग झुग्गी में रह रहे थे वहीं आज दिल्ली मे लगभग दो तिहाई से ज्यादा आबादी अनाधिकृत कालोनियों, झुग्गीयों पुनर्वास कालोनियों में रहती है। आवास और ग़रीबी उन्मूलन

मंत्रालय की रिपोर्ट बताती है कि दिल्ली में हर पांचवा व्यक्ति झुग्गी में रहता है। ंयाने दिल्ली की 18 प्रतिशत आबादी झुग्गीयों में रहती है। इसका सीधा मतलब है कि हमारे नीति नियन्ताओ के इस तथाकथित वर्ल्ड क्लास शहर मे 23–25 लाख लोग केवल झुग्गियों मे रहते हैं। इन शोध ापरक जानकारियों के मिलने से बवाना के लोगों और साझा मंच के कार्यकर्त्ताओं के आवास के अधिकार को लेकर संघर्ष को नई धार मिली।

अप्रैल 2008 में बवाना के लोंगों ने ख़तरा केन्द्र से सम्पर्क साधा तब खतरा केन्द्र ने डी.डी.ए. की आवास नीति का अध्ययन करके लोगों को समझाया कि नीति क्या है, और इसके चलते लोगों ने खुद समझा कि नीति में क्या ख़मियां है। क्योंकि प्लाट न मिलने के कारणों में डी.डी.ए. के पुनर्वास की नीति ही मुख्य भूमिका निभाती है। जैसे किसी भी झुग्गी को तोड़े जाने से पहले, डी.डी.ए. अधिकारियों द्वारा किए गए सर्वे में बहुत से झुग्गीवासियों का नाम जानबूझकर शामिल नही किया जाता, किसी को झुग्गी किराए पर या बेच दी गयी लिख दिया जाता भले ही झुग्गी मालिक रह रहा हो या बीमार हो, घर गया हुआ हो या अपनी झुग्गी की रखवाली के लिए भाई या रिश्तेदारों को छोड़ गया हो (ऐसा लोग इसलिए करते हैं क्योंकि झुग्गी बस्तियों में भी झुग्गियों में चोरियां हो जाती हैं और बस्ती में सक्रिय दलाल झुग्गी की गैर मौजूदगी में प्रधान के साथ मिलकर झुग्गियां बेच देते है)। लेकिन सर्वे के दौरान डी.डी.ए. अधिकारी झुग्गी मालिक (वह व्यक्ति जिसके नाम से दस्तावेज बनते हैं) के झुग्गी में न मिलने पर कोई दलील नहीं सुनते और झुग्गी को इस नीति के तहत् अयोग्य दर्ज करते हैं। झुग्गी को डी.डी.ए. अधिकारी अपनी मर्जी से व्यवसायिक लिख देते जिन वजहों से झुग्गी निवासी अयोग्य सिद्ध हो जाता है। भले ही वह व्यक्ति उस झुग्गी में अपने परिवार के साथ रह रहा हो। और अपना परिवार चलाने के लिए घरेलू काम जैसे सिलाई, सब्जी बेचने इत्यादि का काम करता हो।

ख़तरा केन्द्र के साथ बैठक में बवाना के लोगाों से राय लेकर डी.डी.ए. के सर्वेसर्वा (उपराज्यपाल) को इस सम्बन्ध में पत्र लिखा जिसमें बवाना में रह रहे पुनर्वासित लोगों की दिक्क़तों को उजागर किया गया। साथ ही उपराज्यपपाल से मुलाकात के लिए समय मांगा। लेकिन उपराज्यपाल के साथ बैठक का समय जल्दी नहीं मिला। ख़तरा केन्द्र की ओर से लगातार पत्र व्यवहार किया जाता रहा। अप्रैल सन् 2008 को उपराज्यपाल को फिर से पत्र लिखा गया जिसमें बवाना में प्लॉट आवंटन को लेकर की जा रही धांधली की शिकायत की गयी। दरअसल डी.डी.ए. के (पीतमपुरा, उत्तरी क्षेत्र) सहनिदेशक (असिस्टेंट डारेक्टर) एम.एस. चोपड़ा ने 28 अप्रैल तक प्लॉट के आवंटन की प्रक्रिया शुरू होने का आश्वासन बवाना के लोगों को दिया था। लेकिन एम.एस. चोपड़ा ने पूरे दिन लोगों को अपने दफ्तर में इंतज़ार करवाया और जब दफ्तर आए तो कहा कि उन्हें (चोपड़ा को) नहीं मालूम कि तुम लोगों को प्लॉट का आवंटन कब होगा जबकि यह महाशय इसी महीने रिटायर होने वाले थे।

कुछ दिन बाद श्रीमान चोपड़ा रिटायर तो हो गये, लेकिन फिर भी उनका डी.डी.ए. दफ्तर पीतमपुरा में आकर और बवाना में लोगों को प्लाट आवंटन की प्रक्रिया में दखल देना लगातार रहा। हालांकि पीतमपुरा दफ्तर में अधिकारियों द्वारा किए गए दुर्व्यवहार की शिकायतें डी.डी.ए. के मुख्य कार्यालय विकास सदन तक पहुंची लेकिन कोई भी सुनवाई नहीं हुई। बवाना के निवासियों का कहना है कि जिन लोगों के पास अगर वैध दस्तावेज़ थे, तो डी.डी.ए. अधिकारी अपनी सर्वे

ऐसे लोगों के प्लाट आवंटित किए जाते रहे जिनके पास कागज़ नहीं थे और वे लोग पक्के मकान बनाकर रह भी रहे हैं।

✓ साझा मंच की पहल

साझा मंच के कार्यकर्ताओं के पास चूंकि कई पुनर्वास बस्तियों में आजीविका और आवास के मुद्दे पर काम करने का एक लम्बा अनुभव था। यमुना पुश्ता सहित कई अन्य पुनर्वास बस्तियों में भी विभिन्न मुद्दों पर शोध और परामर्शदाता के तौर पर ख़तरा केन्द्र ने काम किया वहीं बवाना पुनर्वास कालोनी में बन्नूवाल नगर के परिवारों को बेदखली के बाद प्लाट आवंटन करवाने में साझा मंच के साथियों की अहम भूमिका रही थी। लोग अपने साथ होने वाले अन्याय को लेकर सक्रिय होना चाहते थे और साझा मंच की संगठित ताकत ने उन्हें संघर्ष के लिए प्रेरित करना शुरू किया।

इधर बवाना में शहर से बेदखल किए गए लोग पहुंचते रहे, इस उम्मीद के साथ कि उन्हें आसानी से काम और मकान मिल जाऐगा लेकिन यहां की असलियत तो कुछ और ही थी। लोगों को जब डी.डी.ए. अधिकारियों से कोई भी आश्वासन नहीं मिला तो उन्होंने अपने–अपने क्षेत्रों के सांसदों और विधायकों से भी संपर्क साधा लेकिन यहां भी उन्हें सिर्फ आश्वासन मिलता। यमुना पुश्ता के कई परिवार उनकी बेदखली के 7 सालों के बाद भी बगैर छत के भटक रहे हैं। बन्नूवाल नगर के 1600 में से लगभग 1150 परिवारों को ही प्लॉट मिल पाया, प्रगति मार्केट का मामला तो खुद डी.डी.ए. अधिकारियों की गलती और भ्रष्टाचार की वजह से उलझ गया। इसके अलावा सावन पार्क, पश्चिम विहार की 3 झुग्गी बस्तियां, केला गोदाम, अशोक विहार, सावन पार्क आदि झुग्गी बस्तियों के लोगों को हर तरह से प्लॉट आवंटन के योग्य होते हुए भी प्लॉट नहीं दिया गया।

✓ ज़मीन की बंदरबांट

अगस्त 2007 में दिल्ली में मल्होत्रा कांड चर्चा में आया। झुग्गी बस्तियों से लोगों को बेदखल कर उन परिवारों को प्लॉट देने के लिए सरकार द्वारा बसायी गयी पुनर्वास कालोनियों में ज़मीन के दलाल (भूमाफिया) सक्रिय थे। ये दलाल डी.डी.ए. अधिकारियों से मिलकर 1 ही प्लॉट को कई–कई लोगों को बेच देते, या फिर डी.डी.ए. द्वारा निर्धारित योग्यता के दस्तावेज़ न होने पर भी अधिकारी और भूमाफिया रिश्वत लेकर प्लॉट दे देते थे। इसी तरह के एक ज़मीन घोटाले में अशोक मल्होत्रा का नाम सामने आया। अशोक मल्होत्रा जो दिल्ली विधान सभा में कैन्टीन चलाता था। पुनर्वास कालोनियों में प्लॉटों की दलाली के मामले में यहीं से उसके ऊँचे सम्पर्क अधिकारियों और राजनेताओं से बन गए जिसका उसने फायदा उठाया। ये मामला मीडिया में उछलने के बाद अशोक मल्होत्रा सी.बी.आई. की गिरफ्त में आया और कई पुनर्वास कालोनियों सहित बवाना के परिवारों को प्लॉट आवंटन करने की प्रक्रिया पर रोक लग गई। सावन पार्क और प्रगति मार्केट सहित कई अन्य बस्तियों के लोगों का भविष्य भी अब सी.बी.आई. की फाइलों में क़ैद हो गया। इतना सब होने के बावजूद डी.डी.ए. के क्षेत्रीय दफ्तरों में खुले–आम पैसे लेकर प्लॉट आवंटित किए गए। साझा मंच के कार्यकर्त्ता (बस्ती प्रचार समिति) एक तरफ बवाना के लोगों के साथ बैठकें कर इस पूरी प्रक्रिया को सड़क पर चुनौती देने की तैयारी कर रहे थे वहीं ख़तरा केन्द्र कार्यकर्ता सरकार की पुनर्वास नीति का विश्लेषण कर रहे थे। दरअसल मास्टर प्लान

और पुनर्वास नीति सरकार के दो ऐसे उपकरण हैं जो कि शहर की ज़मीन और शहरी गरीबों को एक दूसरे से वंचित कर रहे हैं। बवाना में महिलाओं और बच्चों के मुद्दे पर कई अन्य संस्थायें भी काम कर रही थीं। लेकिन इन सभी में आवास की समस्या ही मुख्य थी। क्योकि एक निश्चित आवास (पता) ना होने की वजह से कई सरकारी योजनाओं, राशन कार्ड, पहचान पत्र, स्कूल में एडमिशन लाडली योजना इत्यादि कई सुविधाओं से भी वंचित थे। इधर बवाना के लोग भी अब तक इस बात को समझ चुके थे कि संगठित रहकर और नीतियों की जानकारी ही उन्हें संगठित सरकारी तंत्र से लड़ने में मदद कर सकती है। लिहाज़ा आवास के मुद्दे को बेहतर समझाने और सरकारी पुनर्वास नीति का असली मक़सद समझने के लिए बवाना के लोग बैठकें, कार्यशालाओं में भाग लेने लगे। साझा मंच ने जहां उन लोगों को संगठित करने और संचालन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई वहीं खतरा केन्द्र का काम था कानूनी और आवास के ऊपर सरकार की नीतियों की जानकारी हासिल कर उसकी जानकारी लोगों तक पहुंचाना।

बवाना में पुनर्वासित किए गए बस्तियों में बन्नूवाल नगर के लोगों के पूर्व में किए गए संघर्ष के अनुभव भी काम में आए क्योंकि बन्नूवाल नगर के कई निवासी निर्माण मज़दूर पंचायत संगम के सदस्य भी रहे और सरकार के साथ संघर्ष करने और संगठन की महत्त्वपूर्णता का एक लम्बा अनुभव उनके साथ था। साथ ही पूरे बवाना में बन्नूवाल नगर ही एक ऐसी बस्ती थी जिसके ज़्यादातर लोगों को झुग्गी टूटने के बाद प्लॉट मिल गया और इसके लिए उनका संघर्ष, अनुभव और सांगठनिक ढांचा भी काम आया (जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है)। बन्नूवाल नगर के कई लोगों ने बवाना पुनर्वास कालोनी में बेदखल होकर आए कई बस्तियों के लोगों को भी अपने साथ जोड़ा। जिसमें यमुना पुश्ता, सावन पार्क, पश्चिम विहार की झुग्गी बस्तियां, प्रगति मार्केट, केला गोदाम जैसी बस्तियों के लोग जुड़ने लगे। बवाना में आवास का संघर्ष ज़मीन पर और कागज़ों पर तेज़ी पकड़ने लगा।

लोगों ने अब साझा मंच की कई बैठकों, अभियानों, धरने–प्रदर्शन में भाग लिया और अधिकारियों से मुलाकात की। लेकिन सफलता मिलती नहीं दिख रही थी। दूसरी तरफ उपराज्यपाल के साथ मुलाक़ात को लेकर दबाव बनाया गया और इसमें कामयाबी मिली। उपराज्यपाल के साथ बवाना के मुद्दे पर पहली बैठक 2008 में हुई और उसमें वैधता पर भी प्लाट आवंटन नहीं होने के मुद्दे को उठाया गया। यह मुद्दा प्रगति मार्केट के 234 परिवारों को लेकर था। दरअसल यहां डी.डी.ए. की और भी बड़ी धांधली थी क्योंकि इन आवंटनों में आधे से ज़्यादा आवंटन दोबारा किए गए (डबल अलॉटमेंट)। कुछ को डिमांड लेटर तो मिला लेकिन प्लॉट नहीं मिला और बाकियों को विभिन्न कारण बताकर उन्हें अयोग्य करार दे दिया गया। सावन पार्क के मामले को भी इसी के चलते सी.बी.आई. को सौंप दिया गया। क्योंकि ये मुद्दा भूमाफिया अशोक मल्होत्रा से सम्बन्धित था और पुनर्वास बस्तियों मे धांधली की जांच चल रही थी।

✓ बवाना संघर्श समिति का गठन

साझा मंच लम्बे समय तक लोगों से जुड़े हुए मुद्दों पर सक्रिय रहा। लेकिन इसमें शामिल संग. ठनों के बीच आपसी समन्वय न होने के चलते अलग हो गए। बवाना में कई मुद्दों पर बैठकों और धरने में शामिल होने वाले कई संगठनों ने भी (खासकर बस्ती प्रचार समिति) बवाना पुनर्वास

कालोनी में काम करना छोड़ दिया था। लिहाज़ा बवाना की लड़ाई अधर में लटक गई। ऐसे में ये ज़रूरी था कि लोगों में विश्वास जगाया जाए और हताश हो चुके लोगों में फिर से अपने मौलिक अधिकारों को पाने की प्रेरणा जगाई जाए। बवाना के लोगों ने अब बजाए किसी और संगठन के कार्यकर्ताओं के भरोसे संघर्ष न कर सीधे अपने बलबूते संघर्ष करना तय किया। लोगों ने तय किया कि नीतियों को खुद समझेगें, खुद ही संगठित होगें और खुद मिलकर संघर्ष करेंगें।

सन् 2010 के आधी छमाही की बात है, साझा मंच की बैठक में शामिल होने से पहले खुद बवाना के सक्रिय, अनुभवी और सांगठनिक ढांचे की समझ रखने वालों ने बवाना पुनर्वास कालोनी के लोगों के साथ फिर बातचीत करना शुरू किया। उन्हें फिर से भरोसा दिलाया कि हमारी लड़ाई अधर में नहीं छोड़ी जा सकती, हम आधा रास्ता तय कर चुके हैं, आधा बाकी है। हमने पिछले 5–6 सालों में जितना संघर्ष किया है उसका प्रतिफल मिलना ही चाहिए। लोग आपस में छोटी–छोटी बैठकें करने लगे। लोगों में धीरे–धीरे नई चेतना आने लगी, उन्हें समझ में आ गया कि बिना संघर्ष किए दिल्ली में उन्हें अधिकारों का मिलना सम्भव नहीं है। घर और रोज़गार जरूरी है, जीने का मौलिक अधिकार है और कोई भी सरकार कैसी भी जनविरोधी नीति बनाकर इस अधिकार को छीन नहीं सकती।

इन बैठकों का असर दिखा, सम्पर्क बढ़ा, आपसी मतभेद दूर हुए और सीधे संघर्ष की तैयारी भी होने लगी लेकिन इसे पूरे संघर्ष को एक व्यवस्थित स्वरूप और कामकाज की रूपरेखा देने के लिए ज़रूरी था कि लोगों को एक सांगठनिक दायरे में लाया जाए। साझा मंच की नियमित होने वाली एक बैठक के बाद लोगों ने सांगठनिक नाम दिया "बवाना संघर्ष समिति" और आगे की लड़ाई का स्वरूप इसी समिति के अर्न्तगत तय किया जाने लगा। साझा मंच के सदस्य और "निर्माण मज़दूर पंचायत संगम" के कार्यकर्ता के तौर पर काम करने वाले व्यक्तियों ने अपने अनुभवों और सक्रियता से समिति को फिर मज़बूती प्रदान की। तकनीकी ज्ञान और सूचना देने का काम खतरा केन्द्र के ज़िम्मे आया। बन्नूवाल नगर, प्रगति मार्केट, यमुना पुश्ता के कुछ परिवार, सावन पार्क और पश्चिम विहार की बस्तियों के लोगों ने समिति में शामिल होना शुरू कर दिया। संघर्ष की नई रूपरेखा तैयार की गई.–

1. बवाना में फिर से लगातार बैठकें होंने पर सहमती cuhA
2. बन्नूवाल नगर के 72 परिवारों और प्रगति मार्केट के 22 लोगों की लिस्ट को लेकर फिर से उपराज्यपाल से मुलाकात कर, उन्हें अपने ही दिए आदेश की याद दिलाई जाए। सावन पार्क और पश्चिम विहार के मामलों में भी कार्यवाही के लिए कहा जाए।
3. ख़तरा केन्द्र डी.डी.ए. विकास सदन, उत्तरी क्षेत्र और पश्चिमी क्षेत्र के डी.डी.ए दफ्तरों और उपराज्यपाल के साथ होने वाली बैठकों, परामर्शों, पत्राचार, सूचना अधिकार, बवाना में कार्यशालाओं के काम को देखेगा।
4. समिति धरने, प्रदर्शन, लोगों को इकट्ठा करना और सामाजिक संगठनों के बीच सूचनाओं को साझा करेगी।
5. पूरे संघर्ष को मज़बूत और एकीकरण किया जाएगाA

जब एक सांगठनिक समिति और संघर्ष का स्वरूप तय हो गया तब पहला काम डी.डी.ए. को प्लाट आवंटन में भ्रष्टाचार पर घेरना था। जिसके तहत् सावन पार्क और बन्नूवाल नगर के लोगों

ने डी.डी.ए. के पूर्व उपनिदेशक एम.एस. चोपड़ा के खिलाफ लिखित शिकायतें दिल्ली पुलिस की आर्थिक अपराध शाखा में दर्ज कराई। हालांकि सरकारी रवैया ढीला–ढाला रहा लेकिन जब इस सम्बन्ध में जांच के लिए दबाव बनाया गया तो लोगों की गवाही भी हुई, लेकिन अफसोस कि केस में कोई प्रगति नहीं हुई। हां ये ज़रूर हुआ कि डी.डी.ए. के पीतमपुरा दफ्तर में चोपड़ा और उनके दलालों की दखलदांजी बंद हो गई। अब उपराज्यपाल के साथ बैठक कर उन्हें बवाना के लोगों के योग्य होने के प्रमाण सौंपना और सावन पार्क तथा पश्चिम विहार मामले में डी.डी.ए. की आनाकानी और जानबूझकर लोगों को प्लॉट नहीं देने का मुद्दा रखना था।

दिसम्बर 2010 में उपराज्यपाल के साथ बैठक हुई। इस बैठक में उपराज्यपाल ने निम्नलिखित आदेश दिये–

1. बन्नूवाल नगर और प्रगति मार्केट के 94 लोगों को डीडीए आयुक्त भूमि प्रबन्धन (कमिशनर लैण्ड मैनेजमेंट) के सामने फिर से सुनवाई हो।
2. सावनपार्क के लोग इस आशय का हलफनामा जमा करें कि उनका दिल्ली में कहीं कोई प्लाट नही है, तो उन लोगों को प्लाट देने पर विचार किया जाएगा।
3. पश्चिम विहार की संजय गांधी कैम्प झुग्गी बस्ती के मामले मे आदेश दिया कि इस मामले की फाइल व पश्चिम विहार का नक्शा उन्हें (उपराज्यपाल को) दिखाया जाए।

इधर बन्नूवाल नगर और प्रगति मार्केट के 94 लोगों को डी.डी.ए. के लेंड कमिश्नर (भूमि प्रबन्धन) के सामने सुनवाई पूरी हो चुकी है। सावन पार्क के 59 लोगों ने अपना हलफनामा और "संजय गांधी कैम्प" झुग्गी बस्ती का नक्शा उपराज्यपाल कार्यालय में जमा करा दिया गया है। लेकिन एक साल से ज़्यादा का समय बीत जाने के बावजूद डी.डी.ए. ने सिर्फ 94 लोगों की सुनवाई की है जबकि प्लाट अभी तक नही दिया है। बाकी के मामलों में डीडीए ने उपराज्यपाल के आदेशों का सिर्फ उल्लंघन किया है।

उपसंहार

बवाना में आवास के अधिकार को लेकर किए जा रहे संघर्ष में धीरे–धीरे सरकारी नीतियों, शहर के बदलाव और कानून के पीछे की सच्चाई की पर्तें खुलती जा रही हैं और इन नीतियों, कानूनों और सरकार तथा प्राधिकरणों द्वारा अमानवीय तरीके से किये जा रहे क्रियान्वयन को अब बवाना के लोगों से चुनौतियां मिलने लगी हैं। हालांकि बवाना की परिस्थितियां तो नहीं बदलीं, लेकिन लोगों का नज़रिया जरूर बदला है। पहले जब यही लोग बेदखल किए गए थे, तब भी प्राधिकरणों का डर और उनका अन्याय इन्हें दबाए रहता था। बवाना में आने के बाद भी अपने ही आवास के अधिकार के लिए इनको रोना और गिड़गिड़ाना पड़ा। क्यों ? क्योंकि तब बस्तियों के लोगों में जागरूकता का अभाव था। ये लोग प्लॉट पाना चाहते थे। लेकिन मिलकर लड़ने की भावना उत्पन्न नहीं हो पायी। न तो प्राधिकरणों की तरफ से न ही स्थानीय नेताओं की तरफ से इनकी फरियाद सुनी गई, लिहाज़ा सालों से ये लोग घोर अभावों और अव्यवस्था में जीते रहे।

लेकिन बन्नूवाल नगर बस्ती की पुनर्वास की प्रक्रिया बवाना की कई बस्तियों से अलग है। यहां बस्ती टूटने से पहले लोग सक्रिय हुए, धरने प्रदर्शन, बातचीत की गई। यहां तक राष्ट्रीय नेताओं से मुलाकात कर समुचित पुनर्वास के लिए दबाव बनाया। नतीजतन बन्नूवाल नगर बस्ती के ज़्यादातर लोगों को जल्दी ही पुनर्वासित कर दिया गया। लेकिन बाकी बस्तियों के परिवारों के साथ ऐसा नहीं हुआ। हर तरह से प्लॉट पाने के हकदार होते हुए भी डी.डी.ए अधिकारियों ने इन्हें अयोग्य करार दिया। वक्त के साथ लोगों ने अपने साथ हुए इस अन्याय की पूरी प्रक्रिया को जब समझना शुरू किया, साथ ही संगठनों और अनुभवी लोगों के मार्गदर्शन ने उन्हें संघर्ष के लिए रास्ता दिखने लगा, लोगों ने आपस में सम्पर्क बढ़ाना और जुड़ना शुरू किया। सावनपार्क, पश्चिम विहार, बन्नूवाल नगर, यमुना पुश्ता आदि बस्तियों के लोगों ने अपने आवास के अधिकार को लेकर अपनी लड़ाई को संगठित और मज़बूत रूप देना शुरू किया है। सरकारी अधिकारी और प्राधिकरणों ने भी लोगों में इस बदलाव के संकेत को समझा। तभी दिल्ली के उपराज्यापाल और डी.डी.ए.के बडे अधिकारियों के निर्णयों में भी यह झलकता है। बेदखली का विरोध, समुचित पुनर्वास और संगठनों का सहयोग, अपने अधिकारों के लिए न्याय पाने तथा नीतिगत मामलों में अपने लिए जगह तलाशने की प्रवृति अब लोगों में आने लगी है। इस संघर्ष में अभी तक बन्नूवाल नगर सहिल केला गोदाम, सुप्रिया अर्पाटमेंट, प्रगति मार्केट, अशोक विहार बस्तियों के लोगों को प्लॉट मिल चुका है।

बवाना में 11 ब्लॉकों में अभी 2500 प्लॉट खाली हैं। बन्नूवाल नगर और प्रगति मार्केट के 94 लोगों को जिन्हें डी.डी.ए. कमेटी ने प्लॉट आवंटन के योग्य नहीं पाया, वहीं डी.डी.ए. कमिश्नर के अलग निर्णय देने से तथा उपराज्यपाल द्वारा "दस्तावेज़ को ही सर्वोपरि मानने के आदेश" ने खुद डी.डी.ए. को ही अपना निर्णय बदलने को मजबूर किया। 94 लोग जिसकी लड़ाई अभी भी जारी है, और इसका रूख भी सकरात्मक है। लोगों को विश्वास है कि इस मामले में उपराज्यपाल द्वारा दस्तावेज़ को ही सर्वोपरि मानने का निर्णय पूरी दिल्ली के पुनर्वास और बेदखली की प्रक्रिया को बदलने की कुव्वत रखता है। बवाना के लोगों ने भी संगठित होने के महत्व को अच्छी तरीके से समझा हैं और "बवाना संघर्ष समिति" का गठन इसी सोच का नतीजा है। लोगों में संघर्ष की

क्षमता विकसित हुई है। ये लोग अब बैठकों में शामिल होते हैं, कार्यशालाएं होने लगी हैं, सरकारी अधिकारियों की आँख में आँख डालकर बहस कर सकते हैं क्योंकि वो अधिकारियों की मनमानी और मक्कारी को समझने लगे हैं जबकि पहले यही लोग इन्हीं अधिकारियों के सामने अपने ही हक़ के लिए हाथ जोड़े खड़े रहते थे। लोगों में संघर्ष का रूप अब केवल आवास तक ही सीमित नहीं रह गया है बल्कि हर तरह से जनविरोधी सरकारी नीतियों के खिलाफ भी जागरूकता की भावना आई है। बवाना संघर्ष समिति के जुझारू कार्यकर्ताओं में दिल्ली के अन्य संगठनों के स. ाथ सम्पर्क बनाये हैं और लोग अब नीतिगत स्तर पर भी चुनौती देने को तैयार हैं। बवाना के लोगों का ये संघर्ष सिर्फ प्लॉट मिलने तक ही सीमित नहीं रहेगा। बवाना पुनर्वास कालोनी के संघर्षशील लोगों की लड़ाई अब एक ऐसे मोड़ पर है जहां से दिल्ली में आवास अधिकार को लेकर कुछ ऐतिहासिक फैसले हो सकते हैं। बवाना के लोगों से जो चुनौती डी.डी.ए. जैसे सरकारी विभाग को मिली है वो ये बताने के लिए काफी है कि संगठित होकर और अपनी समझ को बढ़ाकर अगर संघर्ष किया जाए तो जीत देर से भले ही मिले लेकिन मिलती ज़रूर है। "बवाना संघर्ष समिति" का सूत्र – लड़ेंगे, जीतेंगे, सार्थक होता नज़र आ रहा है"।

l UnHk l ph

1. होली यमुना – ख़तरा केन्द्र, मार्च 2004
2. वॉलन्टियर रिपोर्ट – ख़तरा केन्द्र 2007
3. दिल्ली मास्टर प्लान 2021
4. यमुना प्रदूषण – ख़तरा केन्द्र 2004

5. सम्मिलित रिपोर्ट – बवाना, होलम्बी कलां, मदनपुर खादर और कंचनपुरी – ख़तरा केन्द्र 2004
6. शहरी प्रतिरोध –ख़तरा केन्द्र 2010
7. दिल्ली किसकी है ? – ख़तरा केन्द्र 2003
8. People Housing Policy . ख़तरा केन्द्र 2003
9. Fact Finding Report – ख़तरा केन्द्र 2007

Hazards Centre
92-H,3rd Floor,Pratap Market,Munirka,New Delhi-110067
hazardscentre@gmail.com,
phone-011-26187806,26714244
website:www.hazardscentre.com

Story of Bawana
Beautiful Delhi and the ugly
SAMITA'S WORLD
OUR NEIGHBOUR
HAS LOST HIS
INDIA